(रज़ि०) सहाबियात के हालात

भाग-3

तालिब हाशिमी
अनुवाद
नुज़हत यासमीन

विषय-सूची

1.	हज़रत उम्मे-हराम-बिन्ते-मिलहान (रज़ि०)	9
2.	हज़रत ख़ौला-बिन्ते-सअ़लबा (रज़ि०)	13
3.	हज़रत रबीअ-बिन्ते-मुअव्विज़ (रज़ि०)	19
4.	हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०)	25
5.	हज़रत जमीला-बिन्ते-साद अंसारिया (रज़ि०)	40
6.	हज़रत ख़न्सा-बिन्ते-ख़िज़ाम अंसारिया (रज़ि०)	43
7.	हज़रत उम्मे-अला अंसारिया (रज़ि०)	43
8.	हज़रत अबू-हैसम मालिक (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)	44
9.	हज़रत उम्मे-मालिक-बिन्ते-उबई (रज़ि०)	46
10.	हज़रत बिन्ते-बशीर-बिन-साद (रज़ि०)	47
11.	हज़रत ख़ैरा-बिन्ते-अबू-हदरद असलमी (रज़ि०)	48
12.	हज़रत हबीबा-बिन्ते-ख़ारिजा अंसारिया (रज़ि०)	49
13.	हज़रत उम्मे-बुरदा ख़ौला अंसारिया (रज़ि०)	50
14.	हज़रत ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)	50
15.	हज़रत उनैसा-बिन्ते-अदी (रज़ि०)	53
16.	हज़रत फ़ुरैआ-बिन्ते-असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि०)	53
17.	हज़रत उम्मे-दहदाह (रज़ि०)	54

18.	हज़रत रुबय्यिअ-बिन्ते-नज़्र (रज़ि०)	56
19.	हज़रत बरीरा (रज़ि०)	59
20.	हज़रत उम्मे-सुम्बुला (रज़ि०)	64
21.	हज़रत क़ैला (रज़ि०)	64
22.	हज़रत उम्मे-इसहाक़ (रज़ि०)	65
23.	हज़रत उम्मे-मुंज़िर-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)	66
24.	हज़रत हव्वा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०)	66
25.	हज़रत खुलैदा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)	68
26.	हज़रत कब्शा-बिन्ते-मान अंसारिया (रज़ि०)	69
27.	हज़रत उम्मे-हिशाम अंसारिया (रज़ि०)	70
28.	हज़रत अबू-हुमैद साइदी (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)	70
29.	हज़रत अज़दा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)	71
30.	हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०)	72
31.	हज़रत उम्मे-मिस्तह (रज़ि०)	73
32.	हज़रत हिन्द-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम अंसारिया (रज़ि०)	75
33.	हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम अंसारिया (रज़ि०)	77
34.	हज़रत हब्ता-बिन्ते-मालिक अंसारिया (रज़ि०)	77
35.	हज़रत रबाब-बिन्ते-काब अंसारिया (रज़ि०)	78
36.	हज़रत क़ुर्रतुल-ऐन-बिन्ते-उबादा अंसारिया (रज़ि०)	79
37.	हज़रत उक़्बा-बिन्ते-मुहम्मद अंसारिया (रज़ि०)	80

38.	हज़रत फ़ुरैआ-बिन्ते-ख़ालिद अंसारिया (रज़ि०)	80
39.	हज़रत उम्मे-तुफ़ैल अंसारिया (रज़ि०)	81
40.	हज़रत सुहैला-बिन्ते-मसऊद अंसारिया (रज़ि०)	81
41.	हज़रत मुलैका-बिन्ते-मालिक अंसारिया (रज़ि०)	84
42.	हज़रत उम्मे-सैफ़ अंसारिया (रज़ि०)	85
43.	हज़रत अमरा-बिन्ते-मसऊद अंसारिया (रज़ि०)	86
44.	हज़रत फ़ुक़ैहा-बिन्ते-उबैद अंसारिया (रज़ि०)	86
45.	हज़रत कब्शा-बिन्ते-राफ़ेअ़ (रज़ि०)	87
46.	हज़रत ख़ालिदा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)	88
47.	हज़रत उम्मे-बुजैद (रज़ि०)	89
48.	हज़रत अमरा-बिन्ते-रवाहा (रज़ि०)	90
49.	हज़रत उम्मे-रुफ़ैदा या रुफ़ैदा असलमिया (रज़ि०)	91
50.	हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)	92
51.	हज़रत सुलाफ़ा-बिन्ते-बरा अंसारिया (रज़ि०)	93
52.	हज़रत उनैसा-बिन्ते-अबू-हारिसा (रज़ि०)	93
53.	हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अली (रज़ि०)	94
54.	हज़रत सख़्बरा-बिन्ते-तमीम (रज़ि०)	113
55.	हज़रत अरनब अंसारिया (रज़ि०)	113
56.	हज़रत फ़र्तना (रज़ि०)	113

57.	हज़रत सारा (रज़ि०)	114
58.	हज़रत सफ़ाना-बिन्ते-हातिम (रज़ि०)	116
59.	हज़रत उमामा-बिन्ते-अबुल-आस (रज़ि०)	120
60.	हज़रत उम्मे-हैसम (रज़ि०)	122
61.	एक सहाबिया (रज़ि०) जो अल्लाह की रिज़ा पर राज़ी थीं	122
62.	हज़रत इज़्ज़ा-बिन्ते-अबू-सुफ़ियान (रज़ि०)	124
63.	हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अव्वाम (रज़ि०)	125
64.	हज़रत इज़्ज़ा-बिन्ते-ख़ाबिल (रज़ि०)	126
65.	हज़रत उमैमा-बिन्ते-रुक़ैक़ा (रज़ि०)	127
66.	हज़रत आमिना-बिन्ते-रुक़ैश (रज़ि०)	128
67.	हज़रत सलमा-बिन्ते-ज़ारिअ़-बिन-उरवा (रज़ि०)	128
68.	हज़रत सुबैआ असलमिया (रज़ि०)	128
69.	हज़रत उम्मे-हुसैन (रज़ि०)	129
70.	हज़रत सलामा-बिन्ते-हुर्र (रज़ि०)	129
71.	हज़रत युसैरा-बिन्ते-यासिर (रज़ि०)	130
72.	हज़रत बिन्ते-अब्दुल्लाह-बिन-साबित (रज़ि०)	130
73.	क़ौम की भलाई चाहनेवाली बनू-तमीम की एक सहाबिया (रज़ि०)	131
74.	एक रेगिस्तानी सहाबिया (रज़ि०)	131

75.	हज़रत क़ुतैला-बिन्ते-नज़्र-बिन-मालिक (रज़ि०)	133
76.	हज़रत उफ़ैरा-बिन्ते-ग़िफ़ार हुमैरी (रज़ि०)	134
77.	हज़रत नुअ्म-बिन्ते-क़न्नास (रज़ि०)	134
78.	हज़रत मुआज़ा ग़िफ़ारिया (रज़ि०)	135
79.	हज़रत लुबना-बिन्ते-सवार (रज़ि०)	135
80.	हज़रत कुऐबा-बिन्ते-साद (रज़ि०)	135
81.	ख़सअम क़बीले की एक सहाबिया (रज़ि०)	135
82.	एक परदेसी सहाबिया (रज़ि०)	136
83.	हज़रत अफ़रा-बिन्ते-उबैद अंसारिया (रज़ि०)	137
84.	हज़रत उम्मे-सिनान (रज़ि०)	138
85.	एक गुमनाम सहाबिया (रज़ि०)	139
86.	हज़रत मुआज़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह (रज़ि०)	139
87.	हज़रत मुसैका व हज़रत उमैमा (रज़ि०)	141
88.	हज़रत सलमा अंसारिया (रज़ि०)	141
89.	हज़रत सौदा (रज़ि०)	142
90.	हज़रत ग़ज़ीया (रज़ि०)	143
91.	हज़रत बिन्ते-ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०)	144
92.	हज़रत क़रीरा और हज़रत अक़ीला (रज़ि०)	145
93.	हज़रत जुज़ामा-बिन्ते-जन्दल (रज़ि०)	146

94.	हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०)	146
95.	एक ख़ानाबदोश सहाबिया (रज़ि०)	147
96.	हज़रत उम्मे-राला कुशैरिया (रज़ि०)	149

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है)

हज़रत उम्मे-हराम-बिन्ते-मिलहान (रज़ि०)

सन् 10 हिजरी, हज्जतुल-वदाअ (विदाई-हज) के कुछ दिनों बाद की घटना है कि एक दिन नबी (सल्ल०) मदीना से क़ुबा तशरीफ़ ले गए और अपनी एक रिश्तेदार ख़ातून के घर ठहरे। वे ख़ातून दिल और जान से आप (सल्ल०) की अक़ीदतमन्द थीं। उन्होंने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में खाना पेश किया। आप (सल्ल०) खाना खाकर लेट गए तो वे आप (सल्ल०) के सिर के बालों में ऊँगलियाँ फेरने लगीं कि कोई जूँ हो तो उसे निकाल दें। जल्द ही नबी (सल्ल०) को नीन्द आ गई, लेकिन थोड़ी ही देर बाद आप (सल्ल०) जाग गए। उस वक़्त आप (सल्ल०) के होठों पर मुस्कुराहट थी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "मैंने ख़ाब में देखा है कि मेरी उम्मत के कुछ लोग अल्लाह की राह में जिहाद करने के लिए समुद्र का सफ़र कर रहे हैं।"

ख़ातून ने दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, दुआ फ़रमाएँ कि मुझे भी उन लोगों में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल हो।"

नबी (सल्ल०) ने दुआ फ़रमाई और फिर सो गए। थोड़ी देर बाद फिर मुस्कुराते हुए जागे और वही ख़ाब बयान किया। मेज़बान ख़ातून ने फिर उसी दुआ की दरख़ास्त की। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम भी उसी जमाअत के साथ हो।"

नबी (सल्ल०) से यह ख़ुशख़बरी सुनकर वे ख़ातून इतनी ख़ुश हुईं

कि बेइख़्तियार अल्लाह की तारीफ़ और बड़ाई बयान करने लगीं। वे ख़ातून जिन्हें नबी (सल्ल०) की मेज़बानी की ख़ुशनसीबी हासिल हुई और जिन्हें नबी (सल्ल०) ने जिहाद में शामिल होने की ख़ुशख़बरी सुनाई, हज़रत उम्मे-हराम-बिन्ते-मिलहान अंसारिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत उम्मे-हराम-बिन्ते-मिलहान बड़े बुलन्द मर्तबे की सहाबिया थीं। उनका ताल्लुक़ ख़ज़रज के ख़ानदान बनू-नज्जार से था।

उनके नसब का सिलसिला यह है: उम्मे-हराम-बिन्ते-मिलहान-बिन-ख़ालिद-बिन-ज़ैद-बिन-हराम-बिन-जुन्दुब-बिन-आमिर-बिन-ग़न्म-बिन-अदी-बिन-नज्जार।

सीरत-निगारों ने हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) का नाम नहीं लिखा, वे अपनी कुन्नियत ही से मशहूर हैं।

हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) की माँ का नाम मुलैका-बिन्ते-मालिक था। वे भी बनू-नज्जार से थीं।

हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) सलमा-बिन्ते-ज़ैद या सलमा-बिन्ते-अम्र-बिन-ज़ैद नज्जारी की पोती थीं, जो नबी (सल्ल०) के दादा अब्दुल-मुत्तलिब की माँ थीं। इस रिश्ते से हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की ख़ाला कहा जाता था। मशहूर सहाबी हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) की माँ हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) उनकी सगी बहन थीं और बिअरे-मऊना के शहीद हज़रत हराम-बिन-मिलहान (रज़ि०) उनके सगे भाई थे।

बनू-नज्जार इस्लाम क़बूल करने में दूसरे क़बीलों से आगे थे। इस वजह से वे अंसार में बड़ी इज़्ज़त की नज़रों से देखे जाते थे। हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) भी अपनी बहन और भाई के साथ मदीना में इस्लाम के शुरू में ही ईमान ले आईं।

उनकी पहली शादी अम्र-बिन-क़ैस (रज़ि०) से हुई थी। वे भी

इस्लाम के शुरू के ज़माने में ईमान लाए। उनके साथ उनके नौजवान बेटे क़ैस-बिन-अम्र (रज़ि०) ने भी इस्लाम क़बूल कर लिया। यानी इस्लाम की किरणों ने सारे घर को रौशन कर दिया और उस घर के सभी मर्द और औरतें नबी (सल्ल०) पर जान छिड़कनेवाले बन गए।

नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद लड़ाइयों का सिलसिला शुरू हुआ तो हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) के शौहर हज़रत अम्र-बिन-क़ैस (रज़ि०) और बेटे क़ैस-बिन-अम्र (रज़ि०) को उन तीन सौ तेरह जाँबाज़ों में शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिन्होंने बद्र की लड़ाई में बड़े जोश और जज़्बे से नबी (सल्ल०) का साथ दिया।

सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई छिड़ी जिसमें बाप और बेटे अपनी जानें हथेली पर रखकर बड़ी बहादुरी से लड़े और अल्लाह की राह में शहीद हो गए। शौहर और बेटे की जुदाई से हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) को बहुत सदमा पहुँचा लेकिन उन्होंने उसे बड़े सब्र और हौसले से बरदाश्त किया। इस घटना के कुछ दिन बाद उनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) से हो गया।

हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) का मकान मदीना से बाहर पश्चिमी पथरीले इलाक़े के किनारे क़ुबा के पास था। हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) निकाह के बाद उसी मकान में आ गईं।

सन् 4 हिजरी में हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) को एक और सदमा सहना पड़ा। उनके भाई हज़रत हराम-बिन-मिलहान (रज़ि०) बिअरे-मऊना की घटना में शहीद कर दिए गए। हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) ग़म से निढाल होने के बावजूद अल्लाह की रिज़ा पर राज़ी रहीं। अब वे ख़ुद भी अल्लाह की राह में अपनी जान की क़ुरबानी देने के लिए बेताब रहने लगीं। नबी (सल्ल०) को भी हज़रत हराम (रज़ि०) की मज़लूमाना शहादत का बहुत दुख हुआ।

सहीह मुस्लिम में है कि नबी (सल्ल०) अपनी बीवियों के अलावा

और किसी ख़ातून के घर तशरीफ़ नहीं ले जाते थे, लेकिन उम्मे-सुलैम के घर जाते थे। लोगों ने पूछा तो फ़रमाया, "मुझे उनपर तरस आता है कि उनके भाई ने मेरे साथ रहकर शहादत पाई है।"

इस रिवायत में सिर्फ़ हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) का नाम लिया गया है लेकिन सीरत की दूसरी किताबों में कुछ ऐसी रिवायतें भी मिलती हैं कि नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के अलावा कुछ दूसरी सहाबियात जैसे—हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०), हज़रत उम्मे-फ़ज़्ल (रज़ि०), हज़रत शिफ़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह (रज़ि०), हज़रत असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि०) और हज़रत असमा-बिन्ते-अबू-बक्र (रज़ि०) के घर भी कभी-कभी तशरीफ़ ले जाते थे।

सीरत-निगारों का बयान है कि नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) की बहुत इज़्ज़त करते थे। उनका हाल पूछने तशरीफ़ ले जाते और उनके घर आराम भी फ़रमाते थे। यह बात इसलिए भी दुरुस्त मालूम होती है कि हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) भी हराम-बिन-मिलहान (रज़ि०) की सगी बहन थीं। यानी जो रिश्ता उम्मे-सुलैम (रज़ि०) का हराम (रज़ि०) से था वही रिश्ता उम्मे-हराम (रज़ि०) का था, फिर उनके पहले शौहर और नौजवान बेटे भी अल्लाह की राह में शहीद हो चुके थे इसलिए नबी (सल्ल०) ज़रूर उनसे हमदर्दी रखते होंगे। मुस्तनद रिवायतों के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) ने समुद्री लड़ाई का ख़ाब उस वक़्त देखा जब आप (सल्ल०) हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) के घर आराम फ़रमा रहे थे।

इस ख़ाब की ताबीर हज़रत उसमान (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में इस तरह पूरी हुई कि सन् 28 हिजरी में सीरिया के हाकिम हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि०) ने अमीरुल-मोमिनीन की इजाज़त से साइप्रस (Cyprus) पर क़ब्ज़ा करने के लिए एक समुद्री बेड़ा भेजा। इस्लामी सेना में बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) शामिल थे। उनमें हज़रत

उम्मे-हराम (रज़ि०) के शौहर उबादा-बिन-सामित भी थे। हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) को अल्लाह की राह में जिहाद करने और शहीद होने की बड़ी तमन्ना थी। वे भी अपने शौहर के साथ उस फ़ौज में शामिल होकर साइप्रस (Cyprus) गईं। अल्लाह ने मुसलमानों को विजय दी और साइप्रस (Cyprus) पर इस्लाम का झंडा लहराने लगा। जब मुजाहिद इस लड़ाई को जीतकर लौटने लगे तो हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) भी सवारी पर बैठने लगीं। जानवर अड़ियल था, उसने ज़मीन पर गिरा दिया। हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) सख़्त ज़ख़्मी हो गईं, फिर उसी चोट से उनका इन्तिक़ाल हो गया। इमाम बुख़ारी (रह०) और इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि साइप्रस (Cyprus) की ज़मीन ही उनकी आख़िरी आरामगाह बनी।

हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) की औलाद में तीन लड़कों के नाम मिलते हैं। हज़रत अम्र-बिन-क़ैस अंसारी (रज़ि०) से क़ैस (रज़ि०) और अब्दुल्लाह (रज़ि०) और हज़रत उबादा-बिन-सामित से मुहम्मद (रह०)।

क़ैस (रज़ि०) बद्री सहाबी थे। वे उहुद की लड़ाई में शहीद हुए।

हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) और उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबा सहाबा और अता-बिन-यसार और याला-बिन-शद्दाद-बिन-औस जैसे ताबिई शामिल हैं।

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-सअ़लबा (रज़ि०)

अमीरुल-मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) एक दिन कुछ लोगों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक बूढ़ी ख़ातून मिलीं। उन्होंने अमीरुल-मोमिनीन को रोका और बातें शुरू कर दीं। हज़रत उमर (रज़ि०) सिर झुकाकर देर तक उनकी बातें सुनते रहे और जब तक वे

चुप न हुईं आप ख़ड़े रहे। साथियों में से एक ने कहा, "अमीरुल-मोमिनीन आप इतनी देर तक उस बुढ़िया की बातें सुनते रहे और आपने अपने साथियों को इतनी देर रोके रखा।" हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, "जानते भी हो ये ख़ातून कौन हैं? ये वे ख़ातून हैं, जिनकी बात अल्लाह ने सात आसमानों पर सुनली थी। ख़ुदा की क़सम! अगर वे रात-भर रुकतीं तो मैं सिवाय नमाज़ के और कोई काम न करता और उनकी बाते सुनता।" वे ख़ातून जिनकी दर्द-भरी पुकार अल्लाह ने आसमानों पर सुनी, जिनकी मुसलमानों के ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) इतनी इज़्ज़त किया करते थे, हज़रत ख़ौला-बिन्ते-सअ़लबा (रज़ि०) थीं।

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-सअ़लबा-बिन-असरम-बिन-फह्र-बिन-क़ैस-बिन-सअ़लबा-बिन-ग़न्म-बिन-सालिम-बिन-औफ़ (रज़ि०) का ताल्लुक़ अंसार के क़बीले बनू-औफ़-बिन-ख़ज़रज से था। उनका निकाह उनके चचेरे भाई हज़रत औस-बिन-सामित (रज़ि०) से हुआ जो हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) के भाई थे। वे दोनों भाई बुलन्द मर्तबा सहाबियों में से हैं। हज़रत ख़ौला (रज़ि०) भी अपने शौहर के साथ ईमान लाईं और नबी (सल्ल०) से बैअत का सौभाग्य प्राप्त किया। वे एक घरेलू ख़ातून थीं और गुमनामी की ज़िन्दगी गुज़ार रही थीं कि अचानक एक ऐसी घटना घटी जिससे वे बहुत मशहूर हो गईं और सहाबियों (रज़ि०) की नज़रों में उनका मर्तबा बहुत बुलन्द हो गया।

हुआ यह था कि हज़रत ख़ौला (रज़ि०) के शौहर औस-बिन-सामित (रज़ि०) एक बूढ़े आदमी थे और बुढ़ापे की वजह से उनके मिज़ाज में चिड़चिड़ापन आ गया था और वे ज़रा-ज़रा-सी बात पर भड़क उठते थे। कभी-कभी वे ग़ुस्से में आपे से बाहर हो जाते थे। एक दिन ग़ुस्से में आकर अपनी बीवी हज़रत ख़ौला (रज़ि०) से कह दिया, "तू मेरे ऊपर ऐसी है जैसे मेरी माँ की पीठ।" उस ज़माने में इस तरह की बात कहने का मतलब यह था कि "तुम मुझ पर मेरी माँ की तरह हराम हो।" इस

तरह कहने को "ज़िहार" कहते हैं। जब उनका ग़ुस्सा ठंडा हुआ तो बहुत पछताए कि मैं यह क्या कर बैठा? अब घर को कैसे बचाया जाए? हज़रत ख़ौला (रज़ि०) भी हैरान-परेशान बैठी थीं। जब हज़रत औस (रज़ि०) ने उनके सामने पछतावा ज़ाहिर किया तो बोलीं, "हालाँकि आपने तलाक़ नहीं दी है लेकिन मैं नहीं कह सकती कि ये अल्फ़ाज़ कहने के बाद मेरे-आपके बीच मियाँ-बीवी का रिश्ता बाक़ी रह गया है या नहीं, आप अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में जाएँ और इसका फ़ैसला कराएँ।"

हज़रत औस (रज़ि०) ने कहा, "मुझे नबी (सल्ल०) के सामने यह बात बयान करते हुए शर्म आती है। ख़ुदा के लिए तुम ही नबी (सल्ल०) से इस बारे में पूछो।"

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँची। आप (सल्ल०) उस वक़्त उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) के घर में तशरीफ़ रखते थे। ख़ौला (रज़ि०) ने सारा वाक़िआ बयान किया, फिर कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, क्या मेरी और मेरे बच्चों की ज़िन्दगी को तबाही से बचाने की कोई सूरत हो सकती है?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मेरा ख़याल है कि तुम उसपर हराम हो गई हो।"

एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इस मसले पर अल्लाह की तरफ़ से कोई हुक्म नहीं दिया गया।" नबी (सल्ल०) का जवाब सुनकर हज़रत ख़ौला (रज़ि०) फ़रियाद करने लगीं और बार-बार नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त करने लगीं कि औस (रज़ि०) मेरे चचा के बेटे हैं, उनके मिज़ाज की तेज़ी और बुढ़ापे के हाल से आप वाक़िफ़ हैं। उन्होंने ग़ुस्से में आकर ऐसी बात कह दी है जो मैं क़सम खाकर कह सकती हूँ कि तलाक़ नहीं है। ख़ुदा के लिए कोई रास्ता

बताएँ कि मेरी और मेरे बूढ़े शौहर और बच्चों की ज़िन्दगी बरबाद होने से बच जाए।

नबी (सल्ल०) अपनी बात पर क़ायम रहे लेकिन ख़ौला (रज़ि०) नाउम्मीद नहीं हुईं और नबी (सल्ल०) को अपनी बात समझाने की कोशिश करती रहीं, फिर हाथ उठाकर दुआ माँगी, "ऐ मेहरबान मालिक! मैं तुझसे अपनी सख़्त मुसीबत की फ़रियाद करती हूँ, ऐ अल्लाह! जो बात हमारे लिए रहमत की वजह बन जाए उसे अपने नबी की ज़बान से ज़ाहिर कर दे।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि यह नज़ारा इतना दर्दनाक था कि मैं और घर के सारे लोग रो पड़े।

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) की फ़रियाद जारी थी कि अचानक नबी (सल्ल०) पर 'वह्य' नाज़िल होने की निशानियाँ झलकने लगीं। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "ख़ौला ज़रा इन्तिज़ार करो, शायद अल्लाह ने तुम्हारे मामले का फ़ैसला कर दिया है।"

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) के लिए यह घड़ी सख़्त इम्तिहान की थी। उन्हें डर था कि अगर फ़ैसला मेरे ख़िलाफ़ हुआ तो शायद इस ग़म में जान ही निकल जाएगी। लेकिन जब नबी (सल्ल०) की तरफ़ देखा तो आप (सल्ल०) को मुस्कराते हुए पाया, इससे उनको चैन मिला और ख़ुशख़बरी सुनने के लिए खड़ी हो गईं।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ख़ौला! अल्लाह ने तुम्हारा फ़ैसला कर दिया।" फिर आप (सल्ल०) ने सूरा मुजादला शुरू से आख़िर तक पढ़ी, उसकी पहली ही आयत हज़रत ख़ौला (रज़ि०) के बारे में थी।

> "अल्लाह ने सुन ली उस औरत की बात जो अपने शौहर के मामले में तुमसे तकरार कर रही है और अल्लाह से फ़रियाद किए जाती है। अल्लाह तुम दोनों की बातें सुन रहा है, बेशक

अल्लाह सुनने और देखनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-58 मुजादला, आयत-1)

इसके बाद इस सूरा में नाज़िल होनेवाले हुक्म के मुताबिक़ आप (सल्ल०) ने हज़रत ख़ौला (रज़ि०) से फ़रमाया कि अपने शौहर से कहो कि एक कनीज़ या ग़ुलाम आज़ाद कर दें।

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, मेरे शौहर के पास न कोई कनीज़ है न कोई ग़ुलाम।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो फिर वे लगातार साठ रोज़े रखें।" हज़रत ख़ौला (रज़ि०) बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुदा की क़सम, मेरे शौहर बहुत कमज़ोर हैं, अगर दिन में तीन बार न खाएँ-पिएँ तो आँखों की रौशनी कम होने लगती है। लगातार साठ रोज़े रखना उनके लिए नामुमकिन है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अच्छा तो उनसे कहो साठ मिसकीनों (ग़रीबों) को खाना खिला दें।"

ख़ौला (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे शौहर उसकी भी ताक़त नहीं रखते, लेकिन अगर आप मदद फ़रमाएँ।"

नबी (सल्ल०) के दरवाज़े तो ज़रूरतमन्दों के लिए हमेशा खुले ही रहते थे। आप (सल्ल०) ने हज़रत औस-बिन-सामित (रज़ि०) को खाने-पीने का इतना सामान दिया जो साठ लोगों के दो वक़्त खाने के लिए काफ़ी था। हज़रत औस (रज़ि०) ने यह सामान सदक़ा करके अपने ज़िहार का कफ़्फ़ारा अदा कर दिया।

एक दूसरी रिवायत में है कि कफ़्फ़ारे का आधा सामान नबी (सल्ल०) ने दिया और आधा हज़रत ख़ौला (रज़ि०) ने शौहर को दिया।

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि हज़रत ख़ौला (रज़ि०)

लौटकर घर आईं तो हज़रत औस (रज़ि०) दरवाज़े पर उनका इन्तिज़ार कर रहे थे। उन्होंने बेताबी से पूछा, "क्यों ख़ौला! नबी (सल्ल०) ने क्या हुक्म दिया?"

ख़ौला (रज़ि०) ने सारा हाल सुनाया, फिर कहा, "तुम बहुत खुशक़िस्मत हो, जाओ उम्मे-मुंज़िर-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) से एक ऊँट जितनी खजूरें लेकर साठ मिस्कीनों पर सद्क़ा कर दो ताकि तुम्हारी क़सम का कफ़्फ़ारा अदा हो जाए।

हज़रत औस (रज़ि०) को इस फ़ैसले पर दिल से खुशी हुई और उन्होंने कफ़्फ़ारा अदा करके फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालने का अहद किया।

सूरा मुजादला के नाज़िल होने के बाद हज़रत ख़ौला (रज़ि०) का मर्तबा लोगों की नज़र में बहुत बुलन्द हो गया। बड़े-बड़े सहाबा भी उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। हज़रत उमर (रज़ि०) से मुलाक़ात का जो वाक़िआ पहले बयान हुआ है वह बैहक़ी से लिया गया है। दूसरे सीरत-निगारों ने उसे अलग अन्दाज़ में बयान किया है। वे लिखते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने हज़रत ख़ौला (रज़ि०) को देखा तो उनको सलाम किया। उन्होंने सलाम का जवाब देकर हज़रत उमर (रज़ि०) को वहीं रोक दिया और कहने लगीं, "ओहो, उमर एक ज़माना था कि मैंने तुम्हें उकाज़ के बाज़ार में देखा था, उस वक़्त लोग तुम्हें उमैर! उमैर! कहकर पुकारते थे और तुम लाठी हाथ में लेकर बकरियाँ चराते फिरते थे। थोड़े ही ज़माने के बाद लोग तुम्हें उमर कहने लगे और फिर वह वक़्त आया कि तुम्हारा लक़ब अमीरुल-मोमिनीन हो गया। बस लोगों के मामले में अल्लाह से डरते रहो और यक़ीन जानो जो शख़्स अल्लाह के अज़ाब से डरता है उसके लिए दूर भी क़रीब हो जाता है और जो मौत से डरेगा उसको हर वक़्त मरने का धड़का लगा रहेगा और वह उसी चीज़ को खो देगा जिसे वह बचाना चाहता है।"

कुछ लोग हज़रत उमर (रज़ि०) के साथ थे, उनमें से एक ने कहा, "बड़ी बी, तुमने तो अमीरुल-मोमिनीन को बहुत कुछ कह डाला।"

हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, "ये जो कहती हैं इन्हें कहने दो, तुम्हें मालूम नहीं कि ये कौन हैं? ये ख़ौला-बिन्ते-सअ़लबा (रज़ि०) हैं, इनकी बात तो सात आसमानों के ऊपर सुनी गई थी और इन्हीं के बारे में आयत, 'अल्लाह ने सुन ली उस औरत की बात.......' नाज़िल हुई थी। मुझे तो इनकी बात बेहतर तरीक़े से सुननी चाहिए।"

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और ज़िन्दगी के दूसरे हालात की तफ़सील सीरत की किताबों में नहीं मिलती।

हज़रत रबीअ-बिन्ते-मुअव्विज़ (रज़ि०)

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के कई साल बाद मशहूर सहाबी हज़रत अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि०) के पोते अबू-उबैदा-बिन-मुहम्मद (रह०) एक दिन मदीना की एक बुज़ुर्ग ख़ातून के पास आए और उनसे पूछा—

"अम्मा जान! हमारे नबी (सल्ल०) का रूप-रंग कैसा था?"

ये ख़ातून जो नबी (सल्ल०) के मुबारक चेहरे से अपनी आँखें रौशन कर चुकी थीं, बेइख़्तियार बोल उठीं, "बेटे अगर तुम नबी (सल्ल०) को देखते तो यूँ समझते कि सूरज निकल रहा है।"

यह कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं और वे नबी (सल्ल०) को याद करके रोने लगीं। उनके मुँह से निकले हुए सच्चाई के प्रतीक ये अल्फ़ाज़ इतिहास के पन्नों पर हमेशा के लिए दर्ज हो गए। वे ख़ातून जिन्होंने ये अल्फ़ाज़ कहे थे, हज़रत रबीअ-बिन्ते-मुअव्विज़ (रज़ि०) थीं।

हज़रत रबीअ-बिन्ते-मुअव्विज़ (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबा अंसारी सहाबियात में होती है। उनका ताल्लुक़ अंसार के इज़्ज़तदार

ख़ानदान बनू-नज्जार से था।

नसब का सिलसिला यह है : रबीअ-बिन्ते-मुअव्विज़-बिन-हारिस-बिन-रिफ़ाआ-बिन-हारिस-बिन-सुवाद-बिन-मालिक-बिन-ग़न्म-बिन-मालिक-बिन-नज्जार।

माँ का नाम उम्मे-यज़ीद-बिन्ते-क़ैस था। वे भी बनू-नज्जार से थीं।

हज़रत रबीअ (रज़ि०) के बाप और चचा सब अपनी माँ अफ़रा (हज़रत रबीअ (रज़ि०) की दादी) की औलाद से मशहूर थे। उन सबको, यानी मुअव्विज़ (रज़ि०), मुआज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) को हारिस के बेटों के बदले अफ़रा के बेटे कहा जाता था।

सीरत-निगारों ने हज़रत रबीअ (रज़ि०) की पैदाइश के साल की चर्चा नहीं की है लेकिन रिवायतों से पता चलता है कि नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले वे सूझ-बूझवाली उम्र को पहुँच चुकी थीं। उनके बाप मुअव्विज़ (रज़ि०) और दोनों चचा मुआज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले इस्लाम क़बूल कर लिया था। हज़रत मुआज़ (रज़ि०) और हज़रत औफ़ (रज़ि०) को बैअते-अक़बा में शरीक होने की ख़ुशनसीबी भी हासिल हुई थी। यानी हज़रत रबीअ (रज़ि०) ने होश सम्भाला तो अपने घर को इस्लाम की किरणों से रौशन पाया और वे भी नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही ईमान ले आईं।

हिजरत के बाद नबी (सल्ल०) जिस दिन मदीना पहुँचे, हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) के बयान के मुताबिक़, वह मदीनावालों के लिए सबसे ज़्यादा ख़ुशी का दिन था। हज़रत रबीअ (रज़ि०) भी इस ख़ुशी में शरीक थीं और दूसरी औरतों और लड़कियों के साथ मिलकर स्वागत के गीत गा रही थीं।

हज़रत रबीअ (रज़ि०) के बाप हज़रत मुअव्विज़ (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बहुत मुहब्बत थी और उनके (मुअव्विज के) दोनों भाइयों,

मुआज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) का भी यही हाल था।

सन् 2 हिजरी में बद्र के मैदान में इस्लाम और इस्लाम-दुश्मनों के बीच पहली लड़ाई हुई। क़ुरैश की तरफ़ से उत्बा-बिन-रबीआ, शैबा-बिन-रबीआ और वलीद-बिन-उत्बा ने मिलकर मुसलमानों को मुक़ाबले के लिए ललकारा तो सबसे पहले यही तीनों भाई मुअव्विज़ (रज़ि०), मुआज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) उनके मुक़ाबले के लिए आगे बढ़े। लेकिन क़ुरैश ने इनसे लड़ना पसन्द नहीं किया और पुकारकर कहा, "मुहम्मद! हमारे मुक़ाबले पर हमारी क़ौम और हमारी बराबरी के आदमी भेजो।"

नबी (सल्ल०) के हुक्म पर ये तीनों भाई वापस आ गए और हज़रत हमज़ा (रज़ि०), हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत उबैदा-बिन-हारिस (रज़ि०) उनके मुक़ाबले में आए। इस मुक़ाबले में हज़रत उबैदा (रज़ि०) शैबा के हाथों बुरी तरह ज़ख़्मी हो गए। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) ने क़ुरैश के तीनों लड़ाकुओं को क़त्ल कर दिया।

अब लड़ाई शुरू हो गई। हज़रत मुआज़ (रज़ि०) और मुअव्विज़ (रज़ि०) ने अबू-जह्ल के उपद्रव और इस्लाम-दुश्मनी की चर्चा ख़ूब सुन रखी थी और तमन्ना थी कि किसी तरह यह अल्लाह के दीन का दुश्मन नज़र आ जाए तो उसे ठिकाने लगा दें। वे लड़ाई के मैदान में बराबर इस दुश्मन की तलाश में रहे।

हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) का बयान है कि मैं लड़ाई के मैदान में खड़ा था कि अचानक दो अंसारी नौजवान मेरे दाएँ-बाएँ आकर ख़ड़े हो गए। उनमें से एक ने पूछा, चचा! अबू-जह्ल कहाँ है?" मैंने कहा, "भतीजे! उससे तुम्हें क्या काम है?" वह बोला, "मैंने सुना है कि वह नबी (सल्ल०) को गालियाँ देता है, ख़ुदा की क़सम! वह मुझे मिल जाए तो उसको मारकर रहूँगा या इसी कोशिश में अपनी जान

क़ुरबान कर दूँगा।" दूसरे नौजवान ने भी कुछ इसी तरह की बातें कीं। मुझे इन नौजवान जाँनिसारों के जज़्बे पर बड़ी हैरत हुई। मैंने उनको इशारा करके बताया कि अबू-जहल सामने ही लड़ाई के मैदान में चक्कर लगा रहा है। दोनों बाज़ की तरह झपटे और पलक झपकते ही उसे ख़ाक और ख़ून में लथेड़ दिया। उसके बाद दोनों भाई नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में गए और अबू-जहल के मारे जाने की ख़बर दी। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "किसने मारा है?" दोनों ने कहा, "हमने।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अपनी तलवार दिखाओ।" दोनों ने अपनी तलवारें दिखाईं तो उनमें ख़ून मौजूद था। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बेशक तुम दोनों ने उसको क़त्ल किया है।"

हज़रत मुअव्विज़ (रज़ि०) को इसी लड़ाई में अबू-मुसाफ़ेअ़ नामी एक मुशरिक ने शहीद कर दिया और हज़रत मुआज़ (रज़ि०) सख़्त ज़ख़्मी हालत में लड़ाई के मैदान से वापस लौटे। एक रिवायत में है कि इकरिमा-बिन-अबू-जहल ने अपने बाप का बदला लेने के लिए उनपर हमला किया और उनका एक हाथ काट डाला। इसके बावजूद उन्होंने डटकर मुक़ाबला किया और इकरिमा को भगा दिया।

एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़ उन्हें बनू-ज़ुरैक़ के इब्ने-माइज़ नामी मुशरिक ने उस वक़्त ज़ख़्मी किया जब वे अबू-जहल पर हमला कर रहे थे। बाद में उनका ज़ख़्म भर गया और वे इस घटना के बाद तीस-पैंतीस साल तक ज़िन्दा रहे।

कुछ रिवायतों में है कि हज़रत मुअव्विज़ (रज़ि०) के भाई औफ़ (रज़ि०) भी बद्र की लड़ाई में शहीद हुए, मुआज़ (रज़ि०) का भी ज़ख़्म की वजह से इन्तिक़ाल हो गया।

हज़रत रबीअ (रज़ि०) के बाप और चचा ने नबी (सल्ल०) की ख़ातिर जिस तरह अपनी जान की बाज़ी लगा दी, उसकी वजह से मुसलमान उन्हें बड़ी इज़्ज़त की नज़रों से देखते थे और नबी (सल्ल०)

भी उनसे बहुत लगाव रखते थे।

बद्र की लड़ाई के कुछ दिन बाद हज़रत रबीअ (रज़ि०) का निकाह इयास-बिन-बुकैर लैसी (रज़ि०) से हुआ। निकाह के दूसरे दिन नबी (सल्ल०) हज़रत रबीअ (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए और बिस्तर पर बैठ गए। उस वक़्त कुछ लड़कियाँ दफ़ बजा-बजाकर बद्र के शहीदों की तारीफ़ में अशआर पढ़ रही थीं। (शायद यह इस वजह से था कि हज़रत रबीअ (रज़ि०) के बाप और चचा भी बद्र की लड़ाई में शहीद हुए थे और शादी के दिन ये अशआर उनके ग़म को हल्का करने के लिए पढ़े जा रहे थे।)

ये अशआर पढ़ते हुए जब उन लड़कियों ने यह पढ़ा कि "और हममें वह नबी है जो कल की ख़बर रखता है।" तो नबी (सल्ल०) ने ऐसा कहने से मना फ़रमाया और कहा कि वही पढ़ो जो पहले पढ़ रही थीं।

हज़रत रबीअ (रज़ि०) उन ख़ुशनसीब औरतों में से थीं जिन्हें नबी (सल्ल०) इस्लामी फ़ौज के साथ रखते थे। वे कई लड़ाइयों में शरीक रहीं और उन्होंने बड़ी ज़िम्मेदारी से ज़ख़्मियों की और बीमारों की देखभाल करने और मुजाहिदों को पानी पिलाने के अलावा कई दूसरे काम भी किए।

सहीह बुख़ारी में ख़ुद हज़रत रबीअ (रज़ि०) से रिवायत है कि हम नबी (सल्ल०) के साथ होतीं, हम पानी पिलातीं, ज़ख़्मियों का इलाज करतीं और शहीदों को मदीना वापस लाती थीं।

एक रिवायत में उनका यह बयान है, "हम नबी (सल्ल०) के साथ लड़ाई में शरीक रहती थीं, क़ौम को पानी पिलाती थीं, उनकी ख़िदमत करती थीं और शहीदों और ज़ख़्मियों को मदीना वापस लाती थीं।"

हज़रत रबीअ (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत और अक़ीदत थी। नबी (सल्ल०) कभी-कभी उनके घर भी जाया करते थे।

मुसनद अबू-दाऊद में है कि एक बार नबी (सल्ल०) हज़रत रबीअ (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाए और वुज़ू के लिए पानी माँगा। हज़रत रबीअ (रज़ि०) ने बड़े शौक़ और अक़ीदत से खड़े होकर नबी (सल्ल०) को वुज़ू कराया।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) का बयान है कि एक बार हज़रत रबीअ (रज़ि०) बड़ी अक़ीदत से दो थालियों में अंगूर और छुहारे लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं। नबी (सल्ल०) ने क़बूल कर लिए और हज़रत रबीअ (रज़ि०) को तोहफ़े में कुछ सोना दिया।

सन् 6 हिजरी में बैअते-रिज़वान और हुदैबिया के समझौते का शानदार वाक़िआ पेश आया। इस मौक़े पर हज़रत रबीअ (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के साथ थीं। नबी (सल्ल०) के दूसरे जाँनिसारों के साथ वे भी बैअते-रिज़वान में शरीक हुईं और उन ख़ुशनसीबों में शामिल हुईं जिनके बारे में अल्लाह ने फ़रमाया—

> "(ऐ नबी) अल्लाह ख़ुश हो गया था मोमिनों से जबकि वे पेड़ के नीचे आपके हाथ पर बैअत (प्रतिज्ञा) कर रहे थे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा- 48 फ़त्ह, आयत-18)

हज़रत रबीअ (रज़ि०) बड़ी स्वाभिमानी और ख़ुद्दार थीं। हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) का बयान है कि एक बार एक क़ुरैशी औरत असमा-बिन्ते-मुख़र्र, जो इत्र बेचा करती थी, अपना इत्र बेचने के इरादे से हज़रत रबीअ (रज़ि०) के घर आई और उनके घरेलू हालात पूछने लगी। जब उसे मालूम हुआ कि अबू-जह्ल को हज़रत रबीअ (रज़ि०) के बाप ने क़त्ल किया था तो उसका ख़ानदानी पक्षपात उभर आया और वह तुनककर बोली, "तो तुम हमारे सरदार के क़ातिल की बेटी हो!"

हज़रत रबीअ (रज़ि०) को इस्लाम के दुश्मन के लिए सरदार का शब्द सुनकर बहुत ग़ुस्सा आया, फ़रमाया, "मैं तो ग़ुलाम के क़ातिल की बेटी हूँ।" असमा को अबू-जह्ल की बेइज़्ज़ती बुरी लगी, बोली "मुझे

तुम्हारे हाथ सामान बेचना हराम है।" रबीअ (रज़ि०) ने भी तुरन्त जवाब दिया, "मुझे भी तुमसे कुछ ख़रीदना हराम है। मैं तुम्हारे इत्र को गन्दगी समझती हूँ।"

हज़रत रबीअ (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल किसी किताब में नहीं मिलता। लेकिन हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने सन् 35 हिजरी की एक घटना लिखी है, जिससे पता चलता है कि वे हज़रत उसमान (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने तक ज़िन्दा थीं। उस साल उनका उनके शौहर से झगड़ा हो गया और उन्होंने उनसे कहा कि मेरी सब चीज़ें लेकर मुझसे अलग हो जाओ। उनके शौहर ने ऐसा ही किया और जिस्म के कपड़ों के अलावा सारी चीज़ें ले लीं। हज़रत रबीअ (रज़ि०) ने ख़लीफ़ा के दरबार में दावा किया तो हज़रत उसमान (रज़ि०) ने फ़ैसला दिया कि अपनी शर्त पूरी करो।

हज़रत रबीअ (रज़ि०) से 21 हदीसें रिवायत की गई हैं। उनसे रिवायत करनेवालों में सुलैमान-बिन-यसार (रह०), नाफ़े (रह०), ख़ालिद-बिन-ज़कवान आइशा-बिन्ते-अनस और अबू-उबैदा-बिन-मुहम्मद-बिन-उम्मार-बिन-यासिर (रज़ि०) जैसे बड़े लोग शामिल हैं।

मुसनद अहमद में है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) और हज़रत ज़ैनुल-आबिदीन (रह०) जो इल्म और फ़ज़्ल में बहुत ऊँचा दर्जा रखते हैं, हज़रत रबीअ (रज़ि०) से मसाइल पूछा करते थे। इससे उनकी इल्मी हैसियत का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०)

अल्लाह की क़ुदरत के करिश्मों की शान अजीब है— एक तरफ़ मक्कावालों की बदनसीबी कि अल्लाह की रहमत उनके घर में नाज़िल हुई लेकिन उन्होंने उसे अपने ही हाथों गँवा दिया, दूसरी तरफ़ तीन सौ मील दूर मदीनावालों की ख़ुशनसीबी कि बड़े-बड़े ख़तरों के बावजूद वे

अपनी जान जोखम में डालकर आगे बढ़े और रहमते-आलम (सल्ल०) का दामन थाम लिया और आप (सल्ल०) के लिए अपने दिलों और अपने घरों के दरवाज़े खोल दिए।

नुबूवत के तेरहवें साल नबी (सल्ल०) ने मक्का को अलविदा कहा और यसरिब आ गए तो इस दो हज़ार साल पुराने शहर पर बहार आ गई और वह यसरिब से 'मदीनतुन-नबी' (नबी का शहर) बन गया और उसकी गली-गली और कूचे-कूचे रिसालत की किरणों से जगमगाने लगे।

उसी ज़माने की बात है कि एक दिन एक शरीफ़ ख़ातून दस साल के एक छोटे बच्चे के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। बड़े अदब से नबी (सल्ल०) को सलाम किया, फिर यूँ कहने लगीं।

"ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, यह मेरा बेटा अनस है। मेरी दिली तमन्ना है कि यह आप की ख़िदमत करे। इसको अपने ख़ादिमों में शामिल कर लें और इसके लिए दुआ करें।"

नबी (सल्ल०) ने ख़ातून के मुहब्बत के जज़्बे की तारीफ़ की, बच्चे के सिर पर मुहब्बत भरा हाथ रखा और फिर उनके लिए बरकत और भलाई की दुआ माँगी।

ये ख़ातून जिन्होंने अपने प्यारे बेटे को नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में देने की ख़ुशनसीबी हासिल की और जिनके निष्ठा भाव ने नबी (सल्ल०) को ख़ुश कर दिया, हज़रत उम्मे-सुलैम अंसारिया (रज़ि०) थीं।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबेवाली सहाबियात में होती है। उनका असली नाम रमला या सहला था और कुछ के नज़दीक रुमैशा था। उनका लक़ब ग़ुमैसा और रुमैसा था और कुन्नियत उम्मे-सुलैम थी। कुछ सीरत-निगारों ने उनकी एक और कुन्नियत उम्मे-अनस भी लिखी है, लेकिन यह मशहूर नहीं है।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ख़ज़रज क़बीले की इज़्ज़तदार शाख अदी-बिन-नज्जार से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-सुलैम-बिन्ते-मिलहान-बिन-ख़ालिद-बिन-हराम-बिन-जुन्दुब-बिन-आमिर-बिन-ग़न्म-बिन-अदी-बिन-नज्जार।

माँ का नाम मुलैका-बिन्ते-मालिक-बिन-अदी था। वे भी बनू-नज्जार से थीं।

सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़ाला मशहूर थीं। हक़ीक़त यह है कि हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की ख़ाला इसलिए कहा जाता है कि आप (सल्ल०) की परदादी, सलमा (अब्दुल-मुत्तलिब की माँ) का ताल्लुक़ भी बनू-नज्जार से था और हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) सलमा के भाई की पोती थीं। इसी रिश्ते से वे और उनकी बहन उम्मे-हराम (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़ाला मशहूर हो गई थीं। हालाँकि यह रिश्ता दूर का था लेकिन नबी (सल्ल०) की नज़रों में इसकी बहुत अहमियत थी और आप (सल्ल०) कभी-कभी उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले जाया करते थे।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) बहुत नेक और समझदार ख़ातून थीं। पहली बैअते-अक़बा में जब यसरिब (मदीना) के कुछ भले स्वभाव के लोग नबी (सल्ल०) से बैअत की खुशनसीबी हासिल करके मदीना वापस आए और वहाँ इस्लाम की चर्चा की तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने फ़ौरन इस्लाम क़बूल कर लिया। इसलिए उनकी गिनती अंसार के साबिक़ूनल-अव्वलून (बिलकुल शुरू में इस्लाम क़बूल करनेवालों) में होती है।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) की पहली शादी उनके चचेरे भाई मालिक-बिन-नज़्र-बिन-ज़मज़म-बिन-ज़ैद से हुई। हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) जिनकी मशहूर और बुलन्द मर्तबेवाले सहाबियों में गिनती होती है, उन्हीं के बेटे थे। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने जब

इस्लाम क़बूल किया, हज़रत अनस (रज़ि०) के बचपन का ज़माना था। माँ ने बेटे को भी अपने रंग में रंगना चाहा, वे उन्हें कलिमा पढ़ातीं और इस्लामी तरीक़े सिखाती थीं। उनके शौहर मालिक-बिन-नज़्र न सिर्फ़ अपने पुराने दीन पर क़ायम रहे बल्कि वे हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने पर सख़्त नाराज़ भी हुए और अपने बेटे अनस (रज़ि०) को कलिमा पढ़ाने से भी मना किया। लेकिन इस्लाम का नशा ऐसा न था कि किसी के कहने-सुनने से उतर जाता। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) सख़्ती से इस्लाम पर जमी रहीं और नन्हें अनस (रज़ि०) को भी उसी रंग में रंगती रहीं। नतीजा यह हुआ कि दोनों मियाँ-बीवी में सख़्त टकराव की हालत पैदा हो गई। मालिक-बिन-नज़्र नाराज़ होकर सीरिया चले गए और वहीं उनका इन्तिक़ाल हो गया। (एक रिवायत के मुताबिक़ किसी दुश्मन ने उन्हें क़त्ल कर डाला।) यह दूसरी बैअते-अक़बा (सन् 13 नबवी) से पहले की घटना है।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) अब बेवा थीं और उनका लाडला बच्चा यतीम। कुछ मुद्दत के बाद निकाह के पैग़ाम आने लगे, लेकिन उन्होंने हर पैग़ाम के जवाब में यही कहा कि जब तक मेरा बच्चा मजलिसों में उठने-बैठने और बातचीत करने के क़ाबिल न हो जाए, मैं किसी से निकाह नहीं कर सकती।

जब हज़रत अनस (रज़ि०) थोड़े बड़े हो गए तो उनके क़बीले के एक शख़्स अबू-तलहा ज़ैद-बिन-सहूल (रज़ि०) ने हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को निकाह का पैग़ाम भेजा।

अबू-तलहा ने अभी तक इस्लाम क़बूल नहीं किया था और वे लकड़ी के एक बुत की पूजा किया करते थे। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) अपने पहले शौहर से उनके शिर्क की वजह से ही तो अलग हुई थीं, अब वे यह कैसे सहन कर सकती थीं कि एक दूसरे मुशरिक से निकाह कर लें। साफ़ इन्कार कर दिया और कहा—

"मैं तो एक अल्लाह और उसके सच्चे रसूल पर ईमान लाई हूँ। अफ़सोस है तुमपर कि जिस खुदा को पूजते हो वह एक पेड़ है, (यानी लकड़ी का बुत है) जो ज़मीन की उपज है और उसको एक हबशी ने तैयार किया है। मैं एक अल्लाह की इबादत करनेवाली और तुम अपने हाथों के बनाए बुतों के पुजारी, जो किसी को फ़ायदा या नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। भला मेरा-तुम्हारा मिलाप कैसे हो सकता है!"

ये बातें कुछ ऐसे दिल मोह लेनेवाले अन्दाज़ में कही गईं कि अबू-तलहा के दिल में उतर गईं। कुछ दिन सोच-विचार करते रहे फिर हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के पास आकर कहा "मुझपर सच्चाई खुल गई है और अब मैं तुम्हारा दीन क़बूल करने के लिए तैयार हूँ।"

हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) उस वक़्त बहुत ग़रीब थे, लेकिन हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को उनके इस्लाम क़बूल कर लेने से इतनी खुशी हुई कि बेइख़्तियार कह उठीं–

"फिर मैं तुमसे निकाह करती हूँ और इस्लाम के सिवा कोई महर नहीं लेती।"

उसके बाद अपने बेटे हज़रत अनस (रज़ि०) से फ़रमाया, "अब तुम इनके साथ मेरा निकाह कर दो।"

हज़रत अनस (रज़ि०) ने अपनी माँ का निकाह हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से पढ़ा दिया। वे फ़रमाया करते थे कि मेरी माँ का निकाह हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से अजीब महर पर हुआ। यह रिवायत इब्ने-साद और हाफ़िज़ इब्ने-हजर की है। लेकिन कई दूसरी रिवायतों से पता चलता है कि जब हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल किया, उस वक़्त हज़रत अनस (रज़ि०) की उम्र लगभग नौ साल थी। एक नाबालिग़ बच्चे का निकाह पढ़ाना कुछ अजीब-सी बात मालूम होती है। हो सकता है कि निकाह किसी और ने पढ़ाया हो और हज़रत अनस

(रज़ि०) भी उस मजलिस में मौजूद हों। सही बात अल्लाह ही जानता है।

हज़रत साबित (रज़ि०) कहा करते थे कि मैंने किसी औरत का मह्र उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से बेहतर नहीं देखा।

इस्लाम क़बूल करने के बाद अबू-तलहा (रज़ि०) अपने ईमान के जोश, नबी (सल्ल०) से मुहब्बत और अल्लाह की राह में अपना सब कुछ क़ुरबान कर देने की तमन्ना जैसी ख़ूबियों की वजह से बुलन्द मर्तबा सहाबियों में शामिल हो गए। इस्लाम क़बूल करने के कुछ महीनों बाद हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) को उन 75 ख़ुशनसीबों में शामिल होने का मौक़ा मिला जिन्होंने सन् 13 नबवी में मक्का जाकर नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात की, आप (सल्ल०) से बैअत की और आप (सल्ल०) को इस अह्द (वचन) के साथ मदीना तशरीफ़ लाने की दावत दी कि वे अपनी जान, माल और औलाद के साथ नबी (सल्ल०) की मदद करेंगे।

यह बैअत तारीख़ में "बैअते-लैलतुल-अक़बा" (रात में की जानेवाली बैअत), "बैअते-अक़बा-ए-सानिया" (दूसरी बैअते-अक़बा), और "बैअते-अक़बा-ए-कबीरा" (बड़ी बैअते-अक़बा) के नाम से मशहूर है। कुछ मुद्दत के बाद जब नबी (सल्ल०) मदीना तशरीफ़ लाए तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०), उनके शौहर और बेटे की ख़ुशी का कोई ठिकाना न था। नबी (सल्ल०) की हिजरत के शुरू के दिनों में ही हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने अपने जिगर के टुकड़े हज़रत अनस (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में देने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया।

एक दूसरी रिवायत में है कि हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) की ख़ाहिश पर हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) हज़रत अनस (रज़ि०) को साथ लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आए और नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि अनस को अपनी ग़ुलामी में ले लीजिए। नबी (सल्ल०) ने उनकी दरख़ास्त को क़बूल कर लिया।

हिजरत के कुछ महीने बाद नबी (सल्ल०) ने मुहाजिरों और अंसार के बीच भाईचारा क़ायम किया तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के ही मकान पर नबी (सल्ल०) और सभी मुहाजिर और अंसार इकट्ठा हुए।

सन् 3 हिजरी में हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) अपने शौहर अबू-तलहा (रज़ि०) के साथ बड़े जोश और जज़्बे से उहुद की लड़ाई में शरीक हुईं। जब अचानक हुई एक ग़लती की वजह से मुसलमानों में घबराहट और बेचैनी फैल गई तो हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) उन कुछ सहाबियों में से थे जो आख़िर तक नबी (सल्ल०) की हिफ़ाज़त के लिए डटे रहे। उस मौक़े पर हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के साथ मशक (चमड़े का बड़ा बरतन जिसमें पानी रखते थे) भर-भरकर पानी लातीं और ज़ख़्मियों को पिलाती थीं।

सन् 6 हिजरी के आख़िर में ख़ैबर की लड़ाई हुई। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) कुछ दूसरी सहाबियात के साथ इस्लामी फ़ौज के पीछे लड़ाई के मैदान की तरफ़ चल पड़ीं। नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप नाराज़ हुए और पूछा, "तुम किसके साथ और किसकी इजाज़त से आई हो?" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, हम ऊन कातते हैं और उससे ख़ुदा की राह में मदद करते हैं, हमारे साथ ज़ख़्मियों के इलाज का सामान है, हम लोगों को तीर उठा-उठाकर देते हैं और सत्तू घोल-घोलकर पिलाते हैं।" नबी (सल्ल०) ने उनका जवाब सुनकर उन्हें लड़ाई के मैदान में रहने की इजाज़त दे दी।

जब ख़ैबर जीत लिया गया और सफ़ीया-बिन्ते-हुयैय नबी (सल्ल०) से निकाह पर राज़ी हो गईं तो नबी (सल्ल०) ने उन्हें हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के हवाले किया ताकि वे उन्हें नहला-धुलाकर दुल्हन बनाएँ, क्योंकि लड़ाई की मुसीबतों ने हज़रत सफ़ीया (रज़ि०) को बदहाल कर दिया था। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने बड़े शौक़ और लगन से नबी (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया।

सन् 8 हिजरी में मक्का-विजय के कुछ दिनों के बाद ही हुनैन की ज़बरदस्त लड़ाई पेश आई। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) अपने शौहर अबू-तलहा (रज़ि०) के साथ इस लड़ाई में बड़े जोश और हौसले से शरीक हुईं। लड़ाई के शुरू में बनू-हवाज़िन के माहिर तीर-अन्दाज़ों ने मुसलमानों पर अपने ख़ेमों से इस तेज़ी से तीर बरसाए कि उनकी क़तारों में खलबली मच गई। उस वक़्त नबी (सल्ल०) गिनती के कुछ जाँनिसारों के साथ लड़ाई के मैदान में मज़बूती से जमे खड़े थे और आप (सल्ल०) यह 'रजज़' (लड़ाई में हिम्मत बढ़ानेवाले अशआर) पढ़ रहे थे—

मैं नबी हूँ इसमें ज़रा झूठ नहीं,
मैं अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा हूँ।

जिस-जिस मुसलमान के कान में यह आवाज़ पड़ी वह पलट पड़ा और फिर जब नबी (सल्ल०) का इशारा पाकर हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने बुलन्द आवाज़ में मुसलमानों को यह कहकर पुकारा, "ऐ अंसार की जमाअत, ऐ पेड़ के नीचे बैअत करनेवालो" तो सब नए जोश और नई हिम्मत के साथ नबी (सल्ल०) के चारों तरफ़ जमा हो गए और इस्लाम दुश्मनों पर इस ज़ोर का हमला किया कि वे सब धूल चाटने पर मजबूर हो गए।

जिस वक़्त घमासान की लड़ाई हो रही थी, हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) बड़ी बहादुरी से नबी (सल्ल०) के दाएँ-बाएँ लड़ रहे थे और हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ख़ंजर हाथ में लिए नबी (सल्ल०) पर क़ुरबान होने के लिए तैयार खड़ी थीं। लड़ाई का ज़ोर टूटा तो हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को बताया कि उम्मे-सुलैम हाथ में ख़ंजर लिए खड़ी हैं।

नबी (सल्ल०) ने उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से पूछा, "ख़ंजर का क्या करोगी? उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! कोई मुशरिक क़रीब आया तो उसका पेट फाड़ दूँगी।"

नबी (सल्ल०) यह सुनकर मुस्कुरा उठे। उसके बाद हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल मक्का के जो लोग आज लड़ाई के मैदान से भागे हैं उन्हें क़त्ल कर दें।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह ने ख़ुद उनका इन्तिज़ाम कर दिया है।"

सहीह मुस्लिम में है कि नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) और अंसार की कुछ औरतों को लड़ाइयों में साथ रखते थे, जो लोगों को पानी पिलातीं और ज़ख़्मियों की मरहम-पट्टी करती थीं।

इस रिवायत से ज़ाहिर होता है कि उहुद, ख़ैबर, हुनैन के अलावा हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने कई दूसरी लड़ाइयों में भी हिस्सा लिया होगा।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बहुत मुहब्बत और अक़ीदत थी। नबी (सल्ल०) भी उनकी बहुत क़द्र करते थे। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों के अलावा औरतों में सिर्फ़ एक हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) और उनकी बहन उम्मे-हराम (रज़ि०) को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि नबी (सल्ल०) कभी-कभी उनके घर तशरीफ़ ले जाते थे और दोपहर को वहाँ आराम करते थे। नबी (सल्ल०) फ़रमाया करते थे कि "मुझे उम्मे-सुलैम से हमदर्दी है क्योंकि उनके भाई मेरी मदद करते हुए शहीद हुए हैं।" (हज़रत हराम-बिन-मिलहान (रज़ि०) बिअरे-मऊना की लड़ाई में शहीद हो गए थे।)

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से इतनी अक़ीदत थी कि आप (सल्ल०) जब कभी उनके घर आराम फ़रमाते तो वे आप (सल्ल०) का मुबारक पसीना और गिरे हुए बाल शीशी में तबर्रुक (बरकतवाली चीज़) के तौर पर जमा कर लेतीं। अगर कभी हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घर नमाज़ का वक़्त आ जाता तो नबी (सल्ल०) वहीं चटाई पर नमाज़ पढ़ लेते। एक बार नबी (सल्ल०) ने हज़रत

उम्मे-सुलैम के मुशकीज़े से अपना मुँह लगाकर पानी पिया। वे उठीं और मुशकीज़े का मुँह काटकर अपने पास रख लिया क्योंकि नबी (सल्ल०) के मुबारक होंठों ने उसको छुआ था।

इब्ने-साद का बयान है कि नबी (सल्ल०) ने हज के बाद मिना में अपने बाल कटवाए तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने अपने शौहर अबू-तलहा (रज़ि०) से कहा कि नाई से उन बालों को माँग लो, उन्होंने ऐसा ही किया। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने उन मुबारक बालों को एक शीशी में बरकत व भलाई के लिए अपने पास रख लिया।

इब्ने-साद ने इसी तरह की एक और घटना बयान की है कि जिससे पता चलता है कि नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से कितना लगाव रखते थे। वे लिखते हैं कि नबी (सल्ल०) हज के लिए मदीना से चलने लगे तो उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से पूछा, "तुम हज के लिए नहीं जाओगी?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे शौहर के पास सिर्फ़ दो सवारियाँ थीं और वे उन दोनों सवारियों पर अपने बेटे के साथ चले गए, मेरे पास अब कोई सवारी नहीं।"

नबी (सल्ल०) ने उन्हें अपनी पाक बीवियों के साथ सवार कर दिया और अपने साथ हज के लिए ले गए। रास्ते में आप (सल्ल०) के ग़ुलाम अंजशा ने ऊँटों को तेज़ चलाने के लिए अशआर पढ़ने शुरू कर दिए, जिससे ऊँट दौड़ने लगे। नबी (सल्ल०) ने देखा तो फ़रमाया, "अंजशा, धीरे-धीरे, ऊँटों पर शीशे हैं शीशे!"

हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) का एक बेटा था, जिसका नाम अबू-उमैर था। वह बड़ा प्यारा बच्चा था। नबी (सल्ल०) जब हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाते तो उस बच्चे से बड़े प्यार से बातें करते। एक दिन आप (सल्ल०) तशरीफ़ लाए

तो नन्हें अबू-उमैर को उदास पाया। आप (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से पूछा, "क्या बात है, आज अबू-उमैर चुप-चुप है?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अबू-उमैर की चिड़िया (नग़ैर) जिसके साथ वह खेला करता था, आज मर गई इसी लिए वह उदास है।"

नबी (सल्ल०) ने अबू-उमैर को अपने पास बुलाया और मुहब्बत भरा हाथ उसके सिर पर रखकर मुस्कुराते हुए पूछा, "ऐ अबू-उमैर तेरी नग़ैर (चिड़िया) ने क्या किया?"

अबू-उमैर जवाब में हँस दिया और फिर खेलने-कूदने लगा। उस वक़्त से नबी (सल्ल०) का यह जुम्ला मुहावरे की हैसियत इख़्तियार कर गया।

कुछ मुद्दत के बाद बचपन में ही अबू-उमैर का इन्तिक़ाल हो गया। अबू-तलहा (रज़ि०) उस वक़्त घर से बाहर थे। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने अपने लाडले बच्चे की मौत पर बड़े सब्र और हौसले से काम लिया। ख़ामोशी से उसकी मय्यित को ग़ुस्ल देकर कफ़नाया और एक तरफ़ रख दिया। अपने घरवालों और दूसरे लोगों को मना कर दिया कि अबू-तलहा (रज़ि०) के आते ही अबू-उमैर की मौत की दुख-भरी ख़बर न दें। रात को हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) घर आए। उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने उन्हें खाना खिलाया। जब वे इत्मीनान से बिस्तर पर लेटे तो उनसे कहा, "अगर कोई चीज़ आपको थोड़े दिनों के लिए दी जाए और फिर वापस ले ली जाए तो क्या उसका वापस लिया जाना आपको बुरा लगेगा?"

हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) ने कहा, "बिलकुल नहीं।" बोलीं, "आप का बेटा भी अल्लाह की अमानत था, जिसे उसने वापस ले लिया। आपको अब सब्र करना चाहिए।"

अबू-तलहा (रज़ि०) ने “इन्ना-लिल्लाहि व इन्ना-इलैहि-राजिऊन” पढ़ा और उनसे कहा, “तुमने पहले क्यों नहीं बताया?” बोलीं, “ताकि आप इत्मीनान से खाना खा लें।”

सुबह उठकर हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और सारी बात बयान की।

नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के सब्र और हौसले की तारीफ़ की और दुआ की, “अल्लाह तुम्हें और उम्मे-सुलैम को अबू-उमैर का बदला अता फ़रमाए।”

उसके बाद अल्लाह ने अबू-तलहा (रज़ि०) और उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को एक और बेटा दिया जिसका नाम अब्दुल्लाह रखा गया। उसकी तरबियत नबी (सल्ल०) की देख-रेख में ही हुई और उन्हीं से हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) की नस्ल चली।

एक बार नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाए। उन्होंने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में खजूरें और मक्खन पेश किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, “मैं रोज़े से हूँ।” कुछ देर बाद नबी (सल्ल०) ने नफ़्ल नमाज़ पढ़ी और उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घरवालों के लिए दुआ माँगी। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने दरख़ास्त की, “ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे अपने बेटे अनस से, जो आपका ख़ादिम है, बहुत मुहब्बत है, उसके लिए ख़ासतौर पर दुआ कीजिए।”

नबी (सल्ल०) ने दुआ के लिए हाथ उठाए और हज़रत अनस (रज़ि०) के लिए यूँ दुआ माँगी, “ऐ अल्लाह, उसको माल दे और उसकी उम्र में बरकत अता फ़रमा!”

इस दुआ का असर यह हुआ कि हज़रत अनस (रज़ि०) अंसार में सबसे ज़्यादा ख़ुशहाल हो गए। उनकी बहुत-सी औलाद हुई और उन्होंने बड़ी लम्बी उम्र पाई।

एक बार हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) घर आए तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से कहा कि नबी (सल्ल०) भूखे हैं, कुछ खाना भेज दो। उन्होंने कुछ रोटियाँ अपने बेटे अनस (रज़ि०) को दीं और कहा कि इसी वक़्त जाकर नबी (सल्ल०) को खाना खिलाओ। जब हज़रत अनस (रज़ि०) मस्जिद पहुँचे तो वहाँ नबी (सल्ल०) के पास बहुत-से सहाबा इकट्ठा थे। खाना सिर्फ़ एक आदमी का था इसलिए खाना देने में हिचकिचा रहे थे। नबी (सल्ल०) ने हज़रत अनस (रज़ि०) से पूछा, "तुम्हें अबू-तलहा ने भेजा है?" उन्होंने कहा, "बेशक ऐ अल्लाह के रसूल!" फिर पूछा, "खाने के लिए?" कहा, "जी हाँ।"

नबी (सल्ल०) सारे सहाबियों को साथ लेकर उठ खड़े हुए और हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए। हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) परेशान हुए कि इतने लोगों के लिए तो खाना कम होगा। हज़रत उम्मे-सुलैम से कहा, "अब क्या उपाय किया जाए कि ये सारे लोग खाना खा सकें?" हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने बड़े इत्मीनान से जवाब दिया कि "यह बात अल्लाह और अल्लाह के रसूल बेहतर समझते हैं।" फिर जो थोड़ा-बहुत खाना मौजूद था, उन्होंने नबी (सल्ल०) और सहाबियों के सामने रख दिया। अल्लाह ने उस खाने में इतनी बरकत दी कि सबने पेट भरकर खाना खाया।

सहीह बुख़ारी में है कि सन् 5 हिजरी में जब नबी (सल्ल०) ने हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहूश (रज़ि०) से निकाह किया तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने एक बड़े बरतन में मलीदा बनाकर हज़रत अनस (रज़ि०) के हाथ भेजा और कहा कि नबी (सल्ल०) से कहना कि इस मामूली तोहफ़े को क़बूल फ़रमाएँ।

एक बार एक परेशान हाल आदमी नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आया और आप (सल्ल०) से खाने के लिए कुछ माँगा। नबी (सल्ल०) ने अपनी पाक बीवियों से मालूम करवाया कि आज घर में खाने को

कुछ है? जवाब आया कि आज घर में खाने को कुछ नहीं है। अब नबी (सल्ल०) ने सहाबियों की तरफ़ देखा और फ़रमाया, "कोई है जो अल्लाह के इस बन्दे को अपना मेहमान बनाए?" नबी (सल्ल०) की बात सुनकर हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) खड़े हो गए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इसको मैं अपना मेहमान बनाऊँगा।" यह कहकर घर आए और हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से पूछा, "खाने के लिए कुछ है?" उन्होंने कहा, "बच्चों के लिए थोड़ा-सा खाना पकाया है, उसके सिवा खुदा की क़सम, घर में खाने की कोई चीज़ नहीं।" हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) ने कहा, "कोई बात नहीं, बच्चों को बहलाकर सुला दो— वे सो जाएँ तो हम उनका खाना मेहमान के सामने रख देंगे। तुम चिराग़ ठीक करने के बहाने से उठकर उसे बुझा देना। अंधेरे में मेहमान खाना खा लेगा और हम यूँ ही मुँह चलाते रहेंगे।" इस तरह मेहमान को खाना खिलाकर दोनों मियाँ-बीवी और बच्चों ने सारी रात भूखे ही गुज़ार दी। सुबह को हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आप (सल्ल०) यह आयत पढ़ रहे थे—

"वे लोग अपने ऊपर दूसरों को तरजीह देते हैं हालाँकि उनपर तंगी ही हो।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-9)

फिर आप (सल्ल०) ने अबू-तलहा (रज़ि०) से फ़रमाया, "रात को मेहमान के साथ तुम्हारा बरताव अल्लाह को बहुत पसंद आया।"

एक बार नबी (सल्ल०) ने हज़रत अनस (रज़ि०) को किसी ख़ास काम के लिए भेजा और खुद एक दीवार की छाया में इन्तिज़ार करते रहे। हज़रत अनस (रज़ि०) वापस आए तो नबी (सल्ल०) अपने घर तशरीफ़ ले गए और हज़रत अनस (रज़ि०) को उनके घर भेज दिया। चूँकि काम में व्यस्त होने की वजह से बहुत देर हो गई थी, इसलिए हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने पूछा, "आज इतनी देर क्यों लगाई?"

उन्होंने कहा, "नबी (सल्ल०) ने एक काम के लिए भेजा था।"

उन्होंने पूछा, "क्या काम था?" उन्होंने जवाब दिया, "यह एक राज़ की बात है।"

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने कहा, "उसको किसी से न कहना।" इसलिए उन्होंने कभी किसी को वह बात नहीं बताई।

हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि मेरी माँ के पास एक बकरी थी। उन्होंने उसके घी को एक कुप्पी में जमा किया। जब वह कुप्पी भर गई तो एक लड़की को जिसकी वे परवरिश करती थीं, वह कुप्पी देकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में कहला भेजा कि आप उससे सालन बना लिया करें। लड़की नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई तो आप (सल्ल०) ने घरवालों से कहा कि इस कुप्पी को ख़ाली करके इसे दे दो। लड़की ख़ाली कुप्पी लेकर वापस आई तो हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) घर में नहीं थी। लड़की ने वह कुप्पी खूँटी पर लटका दी। जब उम्मे-सुलैम घर वापस आईं तो कुप्पी को भरा हुआ पाया, उससे घी टपक रहा था। उन्होंने लड़की से कहा, "बेटी, क्या मैंने तुझसे नहीं कहा था कि इसे नबी (सल्ल०) के पास ले जा।" उसने कहा, "मैं ले गई थी, अगर आपको यक़ीन नहीं आता तो जाकर नबी (सल्ल०) से पूछ लें।"

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) लड़की को साथ लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने इसके हाथ आपके पास एक कुप्पी भेजी थी जिसमें घी था।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह आई थी और दे गई थी।" हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने कहा, "क़सम है उस ख़ुदा की, जिसने आपको हक़ के साथ पैदा किया! वह कुप्पी भरी हुई है और उसमें से घी टपक रहा है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ उम्मे-सुलैम तुझे इस बात पर ताज्जुब क्यों है कि अल्लाह ने तुझको रोज़ी दी, जैसा कि तूने उसके नबी को खिलाया, अब खा और खिला।" हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०)

कहती हैं कि मैं घर आई, उस घी को अपने रिश्तेदारों और पड़ोसियों में बाँटा, फिर भी इतना बच गया कि हम एक-दो महीने उससे सालन का काम लेते रहे।

सीरत-निगारों ने हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल बयान नहीं किया है। अनुमान यह है कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में उनका इन्तिक़ाल हुआ। उन्होंने अपने पीछे दो बेटे छोड़े। हज़रत अनस (रज़ि०) जो उनके पहले शौहर मालिक से थे और हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) जो हज़रत अबू-तलहा (रज़ि०) से थे।

हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) से हज़रत अनस (रज़ि०), अब्दुल्ला-बिन-अब्बास (रज़ि०), ज़ैद-बिन-साबित (रज़ि०) और अम्र-बिन-आसिम ने कुछ हदीसें भी रिवायत की हैं। लोग उनसे अपने मसाइल पूछा करते और अपने शक दूर करते थे।

अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) ने उनके बारे में लिखा है, "वे अक़्लमन्द औरतों में से थीं।"

हज़रत अनस (रज़ि०) कहा करते थे कि अल्लाह मेरी माँ को बेहतरीन बदला दे। उन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से मेरी परवरिश और तरबियत की।

सहीह मुस्लिम में है कि नबी (सल्ल०) ने एक बार फ़रमाया, "मैं जन्नत में गया तो मुझे कुछ आहट मिली। मैंने पूछा, 'कौन है?' तो लोगों ने कहा, 'अनस की माँ ग़ुमैसा-बिन्ते-मिलहान हैं'।" यानी नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) को ख़ुद जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनाई।

हज़रत जमीला-बिन्ते-साद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत जमीला-बिन्ते-साद (रज़ि०) ख़ज़रज क़बीले के ख़ानदान हारिस से ताल्लुक़ रखती थीं। वे अपनी कुन्नियत उम्मे-साद से मशहूर

हैं। कुछ रिवायतों में है कि उम्मे-साद के अलावा उनकी कुन्नियत उम्मे-अला भी थी।

नसब का सिलसिला यह है : जमीला-बिन्ते-साद-बिन-रबीअ-बिन-अम्र-बिन-अबू-ज़ुहैर-बिन-मालिक-बिन-इमरु उल-क़ैस-बिन-मालिक-बिन-सअ़लबा-बिन-बनू-हारिस-बिन-ख़ज़रज।

उनके बाप हज़रत साद-बिन-रबीअ अंसारी (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियों में होती है। वे नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले बड़े शौक़ और लगन से पहली बैअते-अक़बा और दूसरी बैअते-अक़बा में शरीक हुए। सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़े और सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई में उसी तरह बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गए।

मरते वक़्त उन्होंने ही अंसार को यह पैग़ाम दिया था कि "अगर आज नबी (सल्ल०) शहीद हो गए और तुममें से कोई एक भी ज़िन्दा बचा तो अल्लाह को हरगिज़ मुँह न दिखा सकोगे और उसके सामने तुम्हारी कोई मजबूरी नहीं सुनी जाएगी। हमने रातवाली अक़बा की बैअत में नबी (सल्ल०) पर अपनी जान क़ुरबान कर देने का हलफ़ (वचन) लिया था।"

अपने बुलन्द मर्तबा बाप की शहादत के वक़्त हज़रत जमीला (रज़ि०) छोटी उम्र की थीं। उनकी परवरिश और तरबियत की ज़िम्मेदारी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने ली थी। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की बीवी हबीबा-बिन्ते-ख़ारिजा (रज़ि०) हज़रत साद-बिन-रबीअ (रज़ि०) की चचेरी बहन थीं। इस रिश्ते से वे हज़रत जमीला (रज़ि०) के फूफा होते थे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) हज़रत जमीला (रज़ि०) से बेटियों जैसी मुहब्बत करते थे। एक दिन लेटे हुए थे और नन्हीं जमीला (रज़ि०) को अपने सीने पर बिठाकर बड़ी मुहब्बत से बार-बार चूम रहे थे। इतने में एक सहाबी मिलने के लिए आए और हैरत से पूछने लगे, "ऐ अबू-बक्र, यह

बच्ची कौन है?"

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने फ़रमाया, "यह उस शख़्स की बेटी है जिसको अल्लाह ने बहुत बुलन्द मर्तबा अता किया, उसने नबी (सल्ल०) पर अपनी जान क़ुरबान कर दी और क़ियामत के दिन वह नबी (सल्ल०) के नक़ीबों (चोबदारों) में शामिल होगा।"

हज़रत उम्मे-साद जमीला (रज़ि०) ने बहुत से सहाबियों के अलावा उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) से भी इल्म हासिल किया और इल्म और फ़ज़्ल के बुलन्द दर्जे पर पहुँच गईं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। एक बार उनकी ख़िलाफ़त के ज़माने में हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुईं तो उन्होंने अपनी चादर उनके लिए बिछा दी। हज़रत उमर (रज़ि०) भी मौजूद थे। उन्होंने पूछा, "ये कौन ख़ातून हैं?"

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने जवाब दिया "यह उस शख़्स की बेटी है जो हम दोनों से बेहतर था। हज़रत उमर (रज़ि०) ने हैरत से पूछा, "वह कैसे?" हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) बोले, "इसलिए कि इसके बाप साद-बिन-रबीअ (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के सामने ही जन्नत की राह ली और हम-तुम इसी दुनिया में बैठे हैं।"

सीरत-निगारों ने हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) के इल्म और फ़ज़्ल की बड़ी तारीफ़ की है और लिखा है कि उन्होंने सिर्फ़ हदीसें ही रिवायत नहीं की थीं बल्कि वे क़ुरआन की तफ़्सीर भी जानती थीं।

हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) का निकाह बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत ज़ैद-बिन-साबित अंसारी (रज़ि०) से हुआ। हज़रत ख़ारिजा-बिन-ज़ैद-बिन-साबित (रह०), जिनकी गिनती सात फ़क़ीहों में होती है, हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) के बेटे थे।

तिरमिज़ी शरीफ़ में है कि नबी (सल्ल०) के एक सहाबी हज़रत

दाऊद-बिन-हुसैन (रज़ि०) हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) से क़ुरआन की तालीम लेते थे।

इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) को क़ुरआन के कुछ हिस्से याद भी थे और बाक़ायदा क़ुरआन की तालीम दिया करती थीं।

हज़रत उम्मे-साद (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल मालूम नहीं है।

हज़रत ख़न्सा-बिन्ते-ख़िज़ाम अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत ख़न्सा-बिन्ते-ख़िज़ाम (रज़ि०) अंसार के किसी ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थीं और सहाबिया थीं।

सहीह बुख़ारी में उनसे रिवायत है कि मेरे बाप ने मेरा निकाह किसी शख़्स से कर दिया। इससे पहले मेरी एक बार शादी हो चुकी थी, कुँआरी न थी। इस दूसरे निकाह से मैं ख़ुश नहीं थी। इसलिए नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और अपना सारा हाल बयान किया। नबी (सल्ल०) ने इस निकाह को नाजाइज़ ठहराया और लौटा दिया (यानी जुदाई करा दी)।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-अला अंसारिया (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने इनके नाम और नसब की चर्चा नहीं की है। लेकिन सहीह बुख़ारी की एक मशहूर रिवायत से साबित है कि वे अंसार के साबिक़ूनल-अव्वलून (मदीना में इस्लाम के पहुँचते ही ईमान लानेवालों) में से थीं। यह रिवायत इमाम बुख़ारी ने मशहूर फ़क़ीह हज़रत ख़ारिजा-बिन-ज़ैद-बिन-साबित (रह०) से रिवायत की है। वे कहते हैं कि उम्मे-अला (रज़ि०) एक अंसारी ख़ातून थीं। उन्होंने नबी (सल्ल०) से बैअत की थी। वे कहती हैं कि हिजरत के बाद अंसार ने मुहाजिरों के

बँटवारे के लिए क़ुर्आ निकाला (यानी परचियों के ज़रिए नाम निकाला) तो हमारे हिस्से में उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) आए। हमने उन्हें अपने घर में मेहमान ठहराया। बद्र की लड़ाई के बाद वे सख़्त बीमार हो गए और उसी बीमारी में उनका इन्तिक़ाल हो गया। जब उनको कफ़न पहना दिया गया तो नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए। मैं (उम्मे-अला) ने कहा, "अबू-साइब (हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन की कुन्नियत) तुमपर अल्लाह की रहमत हो! मैं गवाही देती हूँ कि अल्लाह ने तुम्हें इज़्ज़त दे दी।"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "भला तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि अल्लाह ने उन्हें इज़्ज़त दे दी?"

मैंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, अगर अल्लाह इनको इज़्ज़त न देगा तो फिर किसे देगा?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसमान को भी बहुत यक़ीन था और मुझे भी अल्लाह से उनकी मग़फ़िरत की बड़ी उम्मीद है लेकिन ख़ुदा की क़सम! मैं अल्लाह का रसूल होकर भी ख़ुद से अपने बारे में यह नहीं बता सकता कि मेरे साथ क्या मामला किया जाएगा।[1] यह सुनकर उम्मे-अला (रज़ि०) ने कहा, "ख़ुदा की क़सम! आज के बाद मैं किसी के बारे में इस तरह यक़ीनी तौर पर गवाही न दूंगी।"

हज़रत अबू-हैसम मालिक (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)

वे अंसार के किसी क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं। उनके शौहर हज़रत अबू-हैसम मालिक-बिन-तैहान अंसारी (रज़ि०) बड़े ऊँचे मर्तबेवाले सहाबी थे।

---

1. हदीस के आलिमों ने लिखा है कि नबी (सल्ल०) के कहने का मतलब यह था कि भविष्य के बारे में मैं अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहता बल्कि वही कहता हूँ जिसका इल्म अल्लाह मुझे देता है। इस तरह नबी (सल्ल०) ने लोगों को किसी की ज़ाहिरी हालत देखकर उसे यक़ीनी तौर पर जन्नती या जहन्नमी कहने से मना फ़रमाया है।

तिरमिज़ी की एक रिवायत में है कि एक दिन नबी (सल्ल०) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) के साथ हज़रत अबू-हैसम (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए। उस ज़माने में उनके पास खजूरों के बाग़ और बकरियों के रेवड़ थे, लेकिन कोई ग़ुलाम या सेवक नहीं था और घर का सारा काम वे ख़ुद ही करते थे। नबी (सल्ल०) ने मकान पर पहुँचकर आवाज़ दी तो उनकी बीवी ने बताया कि अबू-हैसम पानी भरने गए हैं। थोड़ी ही देर में वे पानी लेकर आ गए। नबी (सल्ल०) को देखा तो ख़ुशी से बेहाल हो गए। नबी (सल्ल०) से लिपटकर बार-बार कहते थे, "मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, आप इस ग़रीब के घर तशरीफ़ लाए!" फिर नबी (सल्ल०) और आपके साथियों को अपने बाग़ में ले गए। बैठने के लिए कोई चीज़ बिछा दी और ख़जूरों की एक डाली काटकर ले आए।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पकी खजूरें लाए होते।" उन्होंने कहा, "मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान इसमें पकी, अधपकी हर क़िस्म की हैं, जो पसन्द हों खाएँ।" खजूरें खिलाने के बाद साफ़ और ठंडा पानी पिलाया।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "देखो अल्लाह ने कितनी नेमतें दी हैं, ठंडी छाँव, अच्छी खजूरें, ठंडा पानी, ख़ुदा की क़सम! क़ियामत के दिन इनके बारे में पूछा जाएगा।"

इसके बाद हज़रत अबू-हैसम (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप कुछ देर यहीं तशरीफ़ रखें, मैं घर जाकर खाने का इन्तिज़ाम करता हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दूध देनेवाली बकरी ज़िब्ह न करना।" उन्होंने बकरी का एक बच्चा ज़िब्ह किया और उसको भूनकर नबी (सल्ल०) के पास लाए। आप (सल्ल०) ने खाने के बाद उनसे पूछा, "तुम्हारे पास कोई ग़ुलाम है?" उन्होंने कहा, "नहीं।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मेरे पास जब क़ैदी आएँ तो आ जाना।" इसी बीच दो क़ैदी आप (सल्ल०) के सामने पेश किए गए। नबी (सल्ल०) ने अबू-हैसम (रज़ि०) से फ़रमाया, "इनमें से एक पसन्द कर लो।" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! जो आप मुझे देना चाहें, मुझे मंज़ूर है।"

नबी (सल्ल०) ने एक क़ैदी हज़रत अबू-हैसम (रज़ि०) को दिया और उनसे कहा कि इससे अच्छा बरताव करना। वे ग़ुलाम को घर ले आए और अपनी बीवी को सारी बात सुनाई। उन्होंने कहा कि अगर नबी (सल्ल०) के हुक्म का पालन करना चाहते हो तो उसे आज़ाद कर दो। उन्होंने उसी वक़्त उसको आज़ाद कर दिया।

नबी (सल्ल०) को ख़बर हुई तो बहुत ख़ुश हुए और दोनों मियाँ-बीवी की तारीफ़ की।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-मालिक-बिन्ते-उबई (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-मालिक (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज के हुबला ख़ानदान से था।

नसब का सिलसिला यह है : उम्मे-मालिक-बिन्ते-उबई-बिन-हारिस-बिन-उबैद-बिन-मालिक-बिन-सालिम-बिन-ग़न्म-बिन-औफ़-बिन-ख़ज़रज।

ये मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई की सौतेली बहन थीं। इनका निकाह हज़रत राफ़े-बिन-मालिक ज़रक़ी (रज़ि०) से हुआ जो ख़ज़रज क़बीले के सबसे पहले मुसलमान थे। उनके बेटे हज़रत रिफ़ाआ (रज़ि०) भी अंसार के साबिक़ीनल-अव्वलीन में से हैं। हज़रत उम्मे-मालिक (रज़ि०) के बेटे और शौहर दोनों को बैअते-अक़बा में शरीक होने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई। हज़रत उम्मे-मालिक (रज़ि०) ने

भी नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले इस्लाम क़बूल कर लिया था। वे बड़ी पक्की और नेक मुसलमान थीं। सौतेला भाई अब्दुल्लाह-बिन-उबई मुनाफ़िक़ों का सरदार था लेकिन वे दिलो-जान से इस्लाम पर क़ायम थीं।

और ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत बिन्ते-बशीर-बिन-साद (रज़ि०)

नाम और कुन्नियत मालूम नहीं।

ये मशहूर सहाबी हज़रत बशीर-बिन-साद अंसारी (रज़ि०) की बेटी और हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) की बहन थीं। माँ का नाम अमरा-बिन्ते-रवाहा (रज़ि०) था। वे बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि०), जिनका लक़ब शायरे-रसूल था और जो मुअता की लड़ाई में शहीद हुए, की बहन थीं।

ख़न्दक़ की लड़ाई के ज़माने में एक दिन हज़रत अमरा (रज़ि०) ने बेटी को कुछ खजूरें दीं और कहा कि अपने बाप और मामूँ अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि०) के सुबह के खाने के लिए ले जा। वे खजूरें एक कपड़े में रखकर ले जा रही थीं कि रास्ते में नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात हो गई।

नबी (सल्ल०) ने उनसे पूछा, "बेटी यह तुम्हारे पास क्या है?" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ये खजूरें हैं, जो मेरी माँ ने मेरे बाप और मामूँ के सुबह के खाने के लिए भेजी हैं।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ला, ये खजूरें मुझे दे।"

उन्होंने वे खजूरें नबी (सल्ल०) की हथेली पर रख दीं। आप (सल्ल०) की दोनों हथेलियाँ उन खजूरों से नहीं भरीं, फिर भी आप (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि एक कपड़ा बिछाकर इन खजूरों को उसपर फ़ैला दिया जाए। उसके बाद आप (सल्ल०) ने आम एलान करा दिया

कि सभी ख़न्दक़वाले सुबह के खाने के लिए आ जाएँ। जब सभी लोग आ गए तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ये खजूरें खाओ।"

अल्लाह की क़ुदरत से उन खजूरों में इतनी बरकत हुई कि सभी लोगों ने जी भरकर खाया लेकिन खजूरें फिर भी बच गईं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं है।

हज़रत ख़ैरा-बिन्ते-अबू-हदरद असलमी (रज़ि०)

हज़रत ख़ैरा (रज़ि०) अपनी कुन्नियत उम्मे-दरदा से मशहूर हैं। बुलन्द मर्तबा सहाबी अबू-हदरद असलमी (रज़ि०) की बेटी और हज़रत अबू-दरदा अंसारी (रज़ि०) की बीवी थीं।

सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई के बाद अपने शौहर के साथ इस्लाम क़बूल किया और फिर उन्हें नबी (सल्ल०) से बैअत की खुशनसीबी भी हासिल हुई।

सीरत-निगारों ने उनकी समझ-बूझ, इबादत-गुज़ारी, अच्छे अख़लाक़, इल्म व फ़ज़्ल, दीन की समझ और किसी मामले में सही नतीजे पर पहुँचने की सलाहियत की बड़ी तारीफ़ की है।

एक रिवायत में है कि एक शख़्स की बीवी बीमार थीं। वे हज़रत उम्मे-दरदा (रज़ि०) के पास आए। उन्होंने घर का हाल पूछा तो कहा कि बीवी बीमार है। हज़रत उम्मे-दरदा (रज़ि०) ने उनको खाना खिलाया और जब तक उनकी बीवी बीमार रहीं, हाल पूछती और खाना खिलाती रहीं।

एक बार हज़रत उम्मे-दरदा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के एक सहाबी की बीमारी की ख़बर सुनी तो ऊँट पर सवार होकर उनके यहाँ गईं और उनका हाल पूछा।

एक बार अब्दुल-मलिक-बिन-मरवान उमवी ने रात में अपने सेवक

को आवाज़ दी। उसने आने में देर की तो उसपर लानत (फिटकार) भेजी। हज़रत उम्मे-दरदा (रज़ि०) उसके महल में थीं। सुबह हुई तो अब्दुल-मलिक से कहा, "तुमने रात अपने सेवक पर लानत भेजी, हालाँकि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि लानत भेजनेवाले क़ियामत के दिन शफ़ाअत करनेवालों या शहादत देनेवालों में से नहीं होंगे।"

हज़रत उम्मे-दरदा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) और अपने शौहर हज़रत अबू-दरदा (रज़ि०) से कुछ हदीसें रिवायत की हैं। हज़रत उसमान (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हज़रत अबू-दरदा के सामने उनका इन्तिक़ाल हुआ। यह घटना सन् 30 हिजरी की है।

हज़रत अबू-दरदा (रज़ि०) की दूसरी बीवी की कुन्नियत भी उम्मे-दरदा थी, लेकिन वे सहाबिया नहीं थीं।

हज़रत हबीबा-बिन्ते-ख़ारिजा अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत हबीबा (रज़ि०) ख़ज़रज के अग़र ख़ानदान से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : हबीबा-बिन्ते-ख़ारिजा-बिन-ज़ैद-बिन-अबू-ज़ुहैर-बिन-मालिक-बिन-इमरु उल-क़ैस-बिन-मालिक-बिन-सअ़लबा-बिन-काब-बिन-ख़ज़रज-बिन-हारिस-बिन-ख़ज़रज।

उनके बाप हज़रत ख़ारिजा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) की गिनती ऊँचे दर्जे के सहाबियों में होती है। दूसरी बैअ़ते-अक़बा और बद्र की लड़ाई में शरीक हुए और उहुद की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए।

नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद हज़रत हबीबा (रज़ि०) का निकाह हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से हुआ। उनसे एक बेटी उम्मे-कुलसूम पैदा हुईं। हज़रत हबीबा (रज़ि०) मदीना से कुछ दूर 'सख़' नामी जगह पर रहती थीं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) उनसे मिलने वहीं जाया करते

थे। जिस दिन नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हुआ, हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से इजाज़त लेकर हज़रत हबीबा (रज़ि०) के यहाँ 'सख़' गए हुए थे। वहीं नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल की ख़बर सुनी और घोड़े पर सवार होकर फ़ौरन मदीना पहुँचे।

हज़रत हबीबा (रज़ि०) के और ज़्यादा हालात मालूम न हो सके।

हज़रत उम्मे-बुरदा ख़ौला अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-बुरदा (रज़ि०) के बाप का नाम कुछ रिवायतों में मुंज़िर-बिन-ज़ैद अंसारी (रज़ि०) और कुछ में ज़ैद अंसारी (रज़ि०) आया है। उनका निकाह हज़रत बराअ-बिन-औस अंसारी (रज़ि०) से हुआ। एक रिवायत में है कि उन्होंने नबी (सल्ल०) के बेटे इबराहीम को दूध पिलाया। उसके बदले नबी (सल्ल०) ने उन्हें नख़लिस्तान[1] का एक टुकड़ा दिया था। लेकिन सहीह बुख़ारी में हज़रत अनस (रज़ि०) की रिवायत के मुताबिक़ इबराहीम को दूध पिलाने की ख़ुशनसीबी हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) को हासिल हुई थी। क़ाज़ी अयाज़ (रह०) ने लिखा है कि उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) और उम्मे-बुरदा (रज़ि०) एक ही हैं। लेकिन अल्लामा शिबली नोमानी "सीरतुन-नबी (सल्ल०)" में लिखते हैं कि क़ाज़ी अयाज़ की राय दुरुस्त नहीं है क्योंकि उम्मे-बुरदा (रज़ि०) के शौहर बराअ-बिन-औस (रज़ि०) की कुन्नियत अबू-सैफ़ नहीं थी।

और दूसरे हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) मदीना की रहनेवाली थीं और ख़ज़रज के ख़ानदान बनू-नज्जार से थीं। उनका निकाह जाहिलियत के ज़माने में नबी (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब

1. रेगिस्तान का वह हिस्सा जहाँ पानी, झील आदि हों और इसके कारण कुछ हरियाली भी हो।

(रज़ि०) से हुआ था। इस रिश्ते से वे नबी (सल्ल०) की चची थीं। हज़रत हमज़ा (रज़ि०) ने सन् 6 नबवी में इस्लाम क़बूल किया। अनुमान है कि वे भी उनके साथ ही ईमान लाईं और फिर कुछ सालों के बाद उनके साथ ही हिजरत करके मदीना आ गईं।

सन् 3 हिजरी में उहद की लड़ाई में हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की शहादत के बाद उन्होंने हज़रत नोमान-बिन-अजलान अंसारी (रज़ि०) से निकाह कर लिया और बहुत दिनों तक ज़िन्दा रहीं। उनको नबी (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत और अक़ीदत थी। नबी (सल्ल०) को भी उनपर बहुत गर्व और भरोसा था।

इब्ने-माजा (रह०) ने हज़रत अबू-साद (रज़ि०) से रिवायत की है कि नबी (सल्ल०) ने एक बार किसी देहाती से क़र्ज़ लिया। एक दिन वह नबी (सल्ल०) के पास आया और बड़ी सख़्ती से अपना क़र्ज़ वापस माँगने लगा। सहाबियों (रज़ि०) ने उसे डाँटा, "तू जानता नहीं किससे बात कर रहा है?"

देहाती ने कहा, "मैं तो अपनी चीज़ माँग रहा हूँ।" इसपर नबी (सल्ल०) ने सहाबियों से फ़रमाया, "यह शख़्स अपनी बात में सच्चा है, तुम्हें इसका साथ देना चाहिए।" फिर आप (सल्ल०) ने ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) को पैग़ाम भेजा कि अगर तुम्हारे पास खजूरें हों तो इस शख़्स का क़र्ज़ अदा करने के लिए मुझे उधार दे दो। जब हमारे पास खजूरें आएँगी तो मैं तुम्हारा क़र्ज़ लौटा दूँगा।"

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) का पैग़ाम मिला तो उन्होंने फ़ौरन कहा, "मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, जितनी खजूरों की ज़रूरत हो ख़ुशी से ले लें।" नबी (सल्ल०) ने उनसे ज़रूरत-भर खजूरें ले लीं और उस देहाती का क़र्ज़ अदा कर दिया और उसको खाना भी खिलाया। जब वह गया तो नबी (सल्ल०) को दुआएँ दे रहा था।

मुसनद बज़्ज़ार में हज़रत ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) ख़ुद रिवायत

करती हैं कि "नबी (सल्ल०) पर बनू-साइदा के किसी आदमी की साठ साअ (पाँच मन दस सेर) खजूरें क़र्ज़ थीं। उसने उनकी वापसी की माँग की तो आप (सल्ल०) ने एक अंसारी को हुक्म दिया कि वे आप (सल्ल०) की तरफ़ से क़र्ज़ अदा कर दें। उन्होंने फ़ौरन खजूरें पेश कीं लेकिन उस आदमी ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया क्योंकि वे खजूरें उन खजूरों से घटिया थीं जो उसने नबी (सल्ल०) को क़र्ज़ दी थीं। अंसारी ने उससे कहा, "क्या तू नबी (सल्ल०) के पास वापस जा रहा है?"

उसने कहा, "हाँ, नबी (सल्ल०) से बढ़कर कौन इनसाफ़ करनेवाला है?"

नबी (सल्ल०) ने सुना तो आपकी आँखों में आँसू आ गए और फ़रमाया, "उसने सच कहा, मुझसे ज़्यादा इनसाफ़ करने का कौन हक़दार है? अल्लाह उस उम्मत को बाक़ी नहीं रखता जिसमें उसका कमज़ोर उसके ताक़तवर से अपना हक़ किसी परेशानी के बिना न ले सके।"

फिर आप (सल्ल०) ने मुझसे फ़रमाया, "ऐ ख़ौला! तुम उसको खाना खिलाओ और उसका क़र्ज़ अदा कर दो।" मैंने नबी (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया।

इन रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत ख़ौला (रज़ि०) बहुत ख़ुशहाल थीं और नबी (सल्ल०) बिना किसी झिझक के उनसे क़र्ज़ ले लिया करते थे।

हज़रत ख़ौला (रज़ि०) की कोख से हज़रत हमज़ा (रज़ि०) के एक बेटे उमारा पैदा हुए। उन्हीं के नाम पर हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की कुन्नियत अबू-उमारा थी।

उमारा के कोई औलाद नहीं हुई, इस तरह उनसे हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की नस्ल नहीं चली।

हज़रत ख़ौला-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उनैसा-बिन्ते-अदी (रज़ि०)

हज़रत उनैसा-बिन्ते-अदी (रज़ि०) अंसार के किसी क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं। उनका निकाह सलमा-बिन-मालिक से हुआ जो क़बीले-बली से ताल्लुक़ रखते थे और क़बीले-औस में अम्र-बिन-वह्ब के हलीफ़ (जिससे समझौता हो) थे। उनसे अब्दुल्लाह-बिन-सलमा (रज़ि०) पैदा हुए, जिनकी गिनती मशहूर सहाबियों में होती है। अब्दुल्लाह (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद ईमान लाए। अनुमान है कि हज़रत उनैसा (रज़ि०) ने भी बेटे के साथ ही इस्लाम क़बूल किया।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलमा (रज़ि०) पहले बद्र की लड़ाई में शरीक हुए, फिर उहुद की लड़ाई में नबी (सल्ल०) के साथ रहे और इसी लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए अल्लाह की राह में शहीद हो गए। लड़ाई के बाद नबी (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि दो-दो, तीन-तीन शहीदों को एक साथ उहुद के मैदान में दफ़न किया जाए। हज़रत उनैसा (रज़ि०) को बेटे की शहादत की ख़बर मिली तो नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी ख़्वाहिश है कि मैं अपने शहीद बेटे को अपने मकान के क़रीब दफ़न करूँ ताकि मुझे कुछ इत्मीनान रहे।"

नबी (सल्ल०) ने हज़रत उनैसा (रज़ि०) की दरख़ास्त क़बूल कर ली और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलमा (रज़ि०) को मदीना में दफ़न करने की इजाज़त दे दी।

हज़रत उनैसा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत फ़ुरैआ-बिन्ते-असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि०)

हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज क़बीले के ख़ानदान बनू-नज्जार से था।

नसब का सिलसिला यह है : फ़ुरैआ-बिन्ते-असअद-बिन-ज़ुरारा-बिन-अदस-बिन-उबैद-बिन-सअलबा-बिन-ग़न्म-बिन-मालिक-बिन-नज्जार-बिन-सअ़लबा-बिन-अम्र-बिन-ख़ज़रज।

उनके बाप हज़रत अबू-उमामा असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि०) की गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियों में होती है। अंसार के साबिक़ूनल-अव्वलून (मदीना में इस्लाम के पहुँचते ही ईमान लानेवाले लोग) में उनका नाम बिलकुल ऊपर ही नज़र आता है।

उनका इन्तिक़ाल सन् 1 हिजरी शव्वाल के महीने में हुआ। उन्होंने अपने पीछे हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) और एक या दो छोटी लड़कियाँ छोड़ीं। हज़रत असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि०) ने अपने इन्तिक़ाल से पहले अपनी लड़कियों के ताल्लुक़ से नबी (सल्ल०) को वसीअत की। नबी (सल्ल०) ने हमेशा उन लड़कियों का ख़याल रखा।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने लिखा है कि नबी (सल्ल०) ने उनको सोने की बालियाँ, जिनमें मोती पड़े थे, पहनाईं।

अल्लामा इब्ने-असीर (रह०) का बयान है कि जब हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) बड़ी हुईं तो नबी (सल्ल०) ने उनका निकाह हज़रत नुबैत-बिन-जाबिर (रज़ि०) से कर दिया।

हज़रत फ़ुरैआ के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत उम्मे-दहदाह (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-दहदाह (रज़ि०) मशहूर सहाबी हज़रत अबू-दहदाह साबित-बिन-दहदाह अंसारी (रज़ि०) की बीवी थीं। दोनों मियाँ-बीवी के दिलों में ईमान का जोश भरा था और वे निश्छल भाव से अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्मों का पालन करने में दूसरों से बहुत आगे थे।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) की रिवायत है कि जब सूरा हदीद की यह आयत उतरी, "कौन है जो अल्लाह को क़र्ज़ दे, अच्छा क़र्ज़ ताकि अल्लाह उसे कई गुना बढ़ाकर वापस दे और उसके लिए बेहतरीन बदला है।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-11) तो हज़रत अबू-दहदाह (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या अल्लाह हमसे क़र्ज़ चाहता है?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, ऐ अबू-दहदाह!" हज़रत अबू-दहदाह (रज़ि०) ने दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! ज़रा अपना हाथ मुझे दिखाइए।"

नबी (सल्ल०) ने अपना हाथ उनकी तरफ़ बढ़ा दिया। उन्होंने नबी (सल्ल०) का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं अपना बाग़ अल्लाह को क़र्ज़ देता हूँ।"

यह बाग़ जिसे हज़रत अबू-दहदाह (रज़ि०) ने अल्लाह की राह में सदक़ा कर दिया, उसमें खजूर के छः सौ पेड़ थे, उसी में उनका घर था और वहीं उनके बाल-बच्चे रहते थे। नबी (सल्ल०) से यह बात करके वे सीधे घर पहुँचे और अपनी बीवी, उम्मे-दहदाह को पुकारकर कहा, "दहदाह की माँ, बाहर आ जाओ, मैंने यह बाग़ अपने रब को क़र्ज़ दे दिया है।" हज़रत उम्मे-दहदाह (रज़ि०) बोलीं, "अबू-दहदाह, तुमने फ़ायदे का सौदा किया है।" यह कहकर अपने बच्चों और सामान को लेकर बाग़ से बाहर आ गईं।

एक और रिवायत में, जिसे हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) ने बयान किया है, यह वाक़िआ थोड़े अलग अन्दाज़ में है। वे कहते हैं कि एक शख़्स ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं अपने मकान की दीवार उठाना चाहता हूँ, बीच में अमुक आदमी के खजूर का पेड़ है। अगर आप उससे कह दें कि वह उस पेड़ को मुझे दे दे तो मैं अपनी दीवार उस पेड़ के सहारे आसानी से बना लूँगा।"

आप (सल्ल०) ने उस आदमी से फ़रमाया, "तुम अपना वह पेड़ उस आदमी को दे दो, अल्लाह तुम्हें उसके बदले जन्नत में खजूर का पेड़ देगा।" लेकिन उस आदमी ने अपना पेड़ देने में विवश्ता दिखाई।

हज़रत अबू-दहदाह (रज़ि०) को मालूम हुआ तो वे उस आदमी के पास गए और कहा कि "तुम अपना खजूर का पेड़ मुझे दे दो और उसके बदले में मेरा खजूर का बाग़ ले लो।" उसने यह बात मंज़ूर करली। अब, अबू-दहदाह (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने उस आदमी से वह खजूर का पेड़ अपने बाग़ के बदले ख़रीद लिया है, अब मैं इसे आपके हवाले करता हूँ, आप उस ज़रूरतमन्द को दे दीजिए।"

नबी (सल्ल०) यह सुनकर बहुत ख़ुश हुए और कई बार फ़रमाया, "अबू-दहदाह के लिए जन्नत में खजूर के कितने बड़े और भारी गुच्छे हैं!"

उसके बाद अबू-दहदाह (रज़ि०) अपनी बीवी के पास पहुँचे और उनसे कहा, "ऐ उम्मे-दहदाह यहाँ से निकल चलो, मैंने इस बाग़ को जन्नत के खजूर के बदले बेच डाला है।" बीवी ने कहा, "यह तो बड़े फ़ायदे का सौदा हुआ।"

हज़रत उम्मे-दहदाह (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं। सिर्फ़ इतना मालूम है कि हुदैबिया की सुलह के बाद अबू-दहदाह (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ। उन्होंने अपने पीछे कोई औलाद नहीं छोड़ी। शायद उम्मे-दहदाह (रज़ि०) का इन्तिक़ाल भी पहले ही हो चुका था क्योंकि नबी (सल्ल०) ने हज़रत अबू-दहदाह (रज़ि०) की विरासत उनके भाँजे हज़रत अबू-लुबाबा अंसारी (रज़ि०) को दी।

हज़रत रुबय्यिअ-बिन्ते-नज़्र (रज़ि०)

हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) का ताल्लुक़ अंसार के इज़्ज़तदार ख़ानदान बनू-नज्जार से था।

नसब का सिलसिला यह है : रुबय्यिअ-बिन्ते-नज़्र-बिन-ज़मज़म-बिन-ज़ैद-बिन-हराम-बिन-जुन्दुब-बिन-आमिर-बिन-ग़न्म-बिन-अदी-बिन-नज्जार।

बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अनस-बिन-नज़्र (रज़ि०) जो कि उहुद की लड़ाई में शहीद हुए, उनके सगे भाई थे और नबी (सल्ल०) के ख़ादिम हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) उनके सगे भतीजे थे।

हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) का निकाह अपने ही ख़ानदान के शख़्स सुराक़ा-बिन-हारिस से हुआ। उनसे एक बेटे हज़रत हारिसा (रज़ि०) पैदा हुए। सुराक़ा का इन्तिक़ाल नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही हो चुका था, इसलिए उन्हें इस्लाम क़बूल करने का मौक़ा न मिल सका। हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) और उनके बेटे हज़रत हारिसा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत से कुछ पहले (या कुछ बाद) इस्लाम क़बूल किया।

हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) ने बड़ी मुहब्बत से अपने यतीम बेटे की परवरिश की और उनको बाप की कमी न महसूस होने दी। हारिसा (रज़ि०) भी अपनी माँ के बहुत ख़िदमत-गुज़ार और उनका हर हुक्म माननेवाले बेटे थे। माँ भी उनसे बहुत मुहब्बत करती थीं। सन् 2 हिजरी में नबी (सल्ल०) बद्र की लड़ाई में तशरीफ़ ले गए तो हारिसा (रज़ि०) भी घोड़े पर सवार नबी (सल्ल०) के साथ-साथ थे। वे लड़ाई के मैदान में पानी के हौज़ के किनारे पानी पीने के लिए खड़े थे कि एक मुशरिक हिब्बान-बिन-अरिक़ा ने ताककर एक तीर उनकी तरफ़ चलाया, जो उनके गले में जा लगा और इसी सदमे से शहीद होकर जन्नत में पहुँच गए।

हज़रत हारिसा (रज़ि०) की शहादत की ख़बर सुनकर हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) को बहुत सदमा हुआ लेकिन उन्होंने बड़े सब्र और हौसले से काम लिया। जब नबी (सल्ल०) बद्र से मदीना वापस आए तो वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! हारिसा मेरा बहुत प्यारा और फ़रमाँबरदार बेटा था। उसकी जुदाई से मुझे जो सदमा पहुँचा है उसे आप ख़ूब जानते हैं। मैंने चाहा था कि

उसके ग़म में मातम करूँ लेकिन फिर सोचा कि जब तक आप से यह न पूछ लूँ कि हारिसा अब किस हाल में है, चुप रहूँगी। अगर वह जन्नत में है तो सब्र करूँगी और अगर जहन्नम में है तो अल्लाह देखेगा कि मैं उसके ग़म में क्या हाल करती हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह तुम क्या कह रही हो! हारिसा तो जन्नतुल-फ़िरदौस मैं है!"

यह सुनकर हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) ख़ुश हो गईं और उनके मुँह से निकला, "वाह, वाह, ऐ हारिसा!"

उसके बाद उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अब मैं हारिसा के लिए कभी नहीं रोऊँगी।"

सहीह बुख़ारी में है कि एक बार हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) के हाथ से एक अंसारी लड़की का दाँत टूट गया। उसके घरवालों ने क़िसास की माँग की। नबी (सल्ल०) ने उनके हक़ में फ़ैसला दे दिया और फ़रमाया कि दाँत के बदले दाँत और जान के बदले जान ही ख़ुदा का क़ानून है। हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) के भाई हज़रत अनस-बिन-नज़्र (रज़ि०) भी वहाँ मौजूद थे। वे बहन की मुहब्बत के जोश में बोल उठे, "ख़ुदा की क़सम! रुबय्यिअ का दाँत नहीं तोड़ा जाएगा।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "भई ख़ुदा का हुक्म तो यही है, हाँ अगर दावेदार दियत क़बूल कर ले तो क़िसास टल सकता है।"

ख़ुदा की क़ुदरत लड़की के घरवाले दियत लेने पर राज़ी हो गए और हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) क़िसास से बच गईं। इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह के कुछ नेक बन्दे ऐसे हैं कि जब वे किसी बात पर क़सम खा बैठते हैं तो अल्लाह उनकी क़सम पूरी कर देता है।"

हज़रत रुबय्यिअ (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत बरीरा (रज़ि०)

हज़रत बरीरा (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की आज़ाद की हुई कनीज़ थीं। उनके इस्लाम क़बूल करने और सहाबिया होने पर सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

बयान किया जाता है कि उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की ख़िदमत में आने से पहले वे जिस आदमी की कनीज़ थीं, उससे उन्होंने यह तय किया कि नौ (या पाँच) औक़िया सोना सालाना क़िस्तों में देकर वे आज़ाद हो जाएँगी। लेकिन फिर इतनी लम्बी मुद्दत ग़ुलामी में ग़ुज़ारना उन्हें पसन्द न आया। एक दिन उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहने लगीं कि मेरी मदद कीजिए और अपनी कनीज़ बना लीजिए। उम्मुल-मोमिनीन ने उन्हें पूरी रक़म एक साथ देने का वादा कर लिया। जब उनके मालिक से बात की गई तो वह उन्हें बेचने पर तो तैयार हो गया लेकिन इस बात पर अड़ा रहा कि विरासत का हक़ उसका ही होगा।

नबी (सल्ल०) को यह बात मालूम हुई तो आप (सल्ल०) ने हज़रत आइशा (रज़ि०) से फ़रमाया, "विरासत का हक़ उस शख़्स को पहुँचता है जो किसी ग़ुलाम या कनीज़ को ख़रीदकर आज़ाद कर दे।"

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने इस मौक़े पर लोगों को इकट्ठा किया और एक ख़ुत्बा दिया। उसमें अल्लाह की तारीफ़ बयान करने के बाद फ़रमाया, "कुछ लोग ऐसी शर्तें लगाना चाहते हैं जो अल्लाह की किताब में नहीं हैं। याद रखो! जो शर्त अल्लाह की किताब में नहीं है, उसकी कोई अहमियत नहीं। अल्लाह का फ़ैसला बिलकुल सच्चा और उसकी शर्त बिलकुल पक्की है, और सच्चाई यह है कि ग़ुलाम की विरासत ग़ुलाम आज़ाद करनेवाले की ही होती है।"

अब हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हज़रत बरीरा (रज़ि०) को ख़रीदकर

आज़ाद कर दिया लेकिन उन्होंने उम्मुल-मोमिनीन की ख़िदमत में ही रहना पसन्द किया। हज़रत आइशा (रज़ि०) की संगति में उन्हें नबी (सल्ल०) से इल्म सीखने का भी ख़ूब मौक़ा मिला और उन्होंने इल्म और फ़ज़्ल में बहुत ऊँचा दर्जा हासिल कर लिया। सीरत-निगारों का बयान है कि सभी मुसलमान जिनमें बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) भी शामिल हैं, हज़रत बरीरा (रज़ि०) की बहुत इज़्ज़त करते थे।

मुसनद अबू-दाऊद में है कि हज़रत बरीरा (रज़ि०) की शादी हज़रत मुग़ीस (रज़ि०) से हुई थी। वे एक हबशी ग़ुलाम थे और नबी (सल्ल०) के सहाबी थे। हज़रत बरीरा (रज़ि०) को किसी वजह से उनसे नफ़रत हो गई। आज़ाद हुईं तो उनसे ताल्लुक़ तोड़ना चाहा। नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने उन्हें ताल्लुक़ तोड़ने से मना किया। हज़रत बरीरा (रज़ि०) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या यह आपका हुक्म है?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं, मैं सिफ़ारिश करता हूँ।" हज़रत बरीरा (रज़ि०) ने हज़रत मुग़ीस (रज़ि०) के साथ रहने से इनकार कर दिया। तब नबी (सल्ल०) ने दोनों में अलगाव करा दिया। और हज़रत बरीरा (रज़ि०) को हुक्म दिया कि वे एक तलाक़शुदा औरत की तरह इद्दत पूरी करें। हज़रत मुग़ीस (रज़ि०) को हज़रत बरीरा (रज़ि०) से बड़ी मुहब्बत थी। इस जुदाइ से वे इतने दुखी हुए कि मदीना की गलियों में उनके पीछे रोते फिरते थे। एक बार नबी (सल्ल०) ने उनको इस हाल में देखकर हज़रत अब्बास (रज़ि०) से फ़रमाया, "चचा जान! मुग़ीस की मुहब्बत और बरीरा की नफ़रत आपको अजीब नहीं लगती?"

हज़रत बरीरा (रज़ि०) ग़रीब थीं, उनपर सदक़े का माल हलाल था। कुछ लोग उन्हें सदक़ा भेजा करते थे। सहीह मुस्लिम में है कि उनके पास जो कुछ सदक़ा आता था, वे नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों को तोहफ़े में दे देती थीं।

एक रिवायत में है कि एक बार नबी (सल्ल०) घर तशरीफ़ लाए तो

देखा कि चूल्हे पर हाँडी रखी है और उसमें गोश्त पक रहा है। लेकिन खाने के वक़्त आप (सल्ल०) के सामने गोश्त के बजाय कोई और चीज़ रखी गई, आप (सल्ल०) ने इसकी वजह पूछी तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने आप (सल्ल०) को बताया कि गोश्त बरीरा (रज़ि०) को सदक़े में मिला है और उन्होंने हमें तोहफ़े में दिया है, हमने मुनासिब नहीं समझा कि सदक़े का गोश्त आपकी ख़िदमत में पेश करें।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बरीरा के लिए सदक़ा है लेकिन हमारे लिए तोहफ़ा है।"

इफ़्क की घटना (जिसमें उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) पर तुहमत लगाई गई) के मौक़े पर हज़रत बरीरा (रज़ि०) ने जिन अल्फ़ाज़ में उम्मुल-मोमिनीन की पाकदामनी की गवाही दी, वह उनकी ज़िन्दगी का एक रौशन पहलू है।

कहा जाता है कि पहले उनसे उस लांछन के बारे में इशारों में पूछा गया तो उन्होंने समझा कि घर के काम-काज के सिलसिले में पूछा जा रहा है। कहने लगीं, "और तो कोई बुराई नहीं है, मगर मिज़ाज में बचपना है, सो जाती हैं और बकरी आटा खा जाती है।"

जब साफ़-साफ़ शब्दों मे उनसे उस लांछन के बारे में पूछा गया तो फ़ौरन कहा, "सुब्हानल्लाह! ख़ुदा की क़सम! जिस तरह सुनार खरे सोने को जानता है, उसी तरह मैं उम्मुल-मोमिनीन आइशा को जानती हूँ, वे बिलकुल बेगुनाह हैं।"

कुछ रिवायतों में है कि इस सिलसिले में उनपर सख़्ती भी की गई लेकिन वे अपनी बात पर अटल रहीं यहाँ तक कि ख़ुद अल्लाह ने हज़रत आइशा (रज़ि०) की पाकदामनी की तस्दीक़ (पुष्टि) कर दी।

हज़रत बरीरा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल कब हुआ, सीरत-निगारों ने इसकी चर्चा नहीं की, लेकिन रिवायतों से मालूम होता है कि वे नबी

(सल्ल०) के इन्तिक़ाल (सन् 11 हिजरी) के बाद बहुत दिनों तक ज़िन्दा रहीं।

सैयद सुलैमान नदवी (रह०) ने सीरते-आइशा (रज़ि०) में सहीह बुख़ारी के हवाले से लिखा है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती थीं कि बरीरा (रज़ि०) के ज़रिए से इस्लाम के तीन हुक्म मालूम हुए।

1) ग़ुलाम की विरासत का हक़ आज़ाद करनेवाले को मिलेगा।

2) ग़ुलामी की हालत में अगर एक ग़ुलाम और एक कनीज़ का निकाह हो और बीवी आज़ाद हो जाए और शौहर ग़ुलामी की हालत में रहे तो बीवी को हक़ है कि वह अपने शौहर को क़बूल करे या उससे अलग हो जाए।

3) अगर किसी ज़रूरतमन्द को सदक़े का कोई माल मिले और वह अपनी तरफ़ से किसी ऐसे शख़्स को वह माल तोहफ़े में दे, जिसके लिए सदक़ा जाइज़ नहीं, तो वह माल उसके लिए जाइज़ होगा, यानी उसकी हैसियत बदल जाएगी।

हज़रत बरीरा (रज़ि०) से कई हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनसे इल्म हासिल करनेवाले शागिर्द बहुत-से थे। उनसे हदीस सुननेवालों में उमवी ख़लीफ़ा अब्दुल-मलिक-बिन-मरवान भी शामिल है। कहा जाता है कि ख़लीफ़ा बनने से पहले वह एक बार हज़रत बरीरा (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो उन्होंने उससे दोटूक अन्दाज़ में कहा, "अब्दुल-मलिक ध्यान से सुनो! मैं तुममें कुछ ऐसी निशानियाँ देख रही हूँ जिनसे मालूम होता है कि अल्लाह किसी दिन तुम्हें हुकूमत अता करेगा। अगर तुम हाकिम बन जाओ तो ख़ून-ख़राबे और फ़साद से हमेशा बचना। मैं यह इसलिए कह रही हूँ कि मैंने अपने कानों से नबी (सल्ल०) को फ़रमाते सुना है कि जिस शख़्स ने किसी मुसलमान को नाहक़ क़त्ल किया होगा, उसको धक्के देकर जन्नत के दरवाज़े से पीछे हटा दिया जाएगा।"

हज़रत बरीरा (रज़ि०) बुलन्द अख़लाक़वाली थीं उनकी कुछ ख़ूबियाँ जैसे नबी (सल्ल०) से मुहब्बत, सब्र, सहनशीलता, संजीदगी, सच्चाई, इबादतगुज़ारी, अल्लाह पर भरोसा और लोगों की भलाई की तमन्ना बहुत नुमायाँ थीं। नबी (सल्ल०) के घरवालों और दूसरे रिश्तेदारों का बहुत एहतिराम करती थीं। इबादत से बहुत लगाव था। नबी (सल्ल०) की हदीस बयान करने लगतीं तो अक़ीदत और एहतिराम से दिल भर आता और आँखें नम हो जातीं।

कुछ रिवायतों में हज़रत बरीरा (रज़ि०) के क़ौल (कथन) नक़ल किए गए हैं, जिनसे एक मोमिन की सूझ-बूझ का सुबूत मिलता है।

इनमें कुछ कथन ये हैं :

(1) किसी को नेकी की बात बताने में कंजूसी करना अमानत में ख़ियानत करने जैसा है।

(2) हमेशा हलाल रोज़ी खाओ, उसमें अनगिनत बरकतें हैं।

(3) बेकार की बातें करने से दिल काला हो जाता है। परहेज़गार वही है जो अपनी ज़बान पर क़ाबू रखे। ज़रूरत से ज़्यादा बोलनेवाले को झूठ की आदत पड़ जाती है।

(4) किसी के साथ नेकी करो तो उसका बदला न चाहो।

(5) बहादुर वह है जो कमज़ोर और बेकस पर वार नहीं करता और न कमज़ोर से बदला लेता है।

(6) मालदार वह है जो ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी करता है।

(7) किसी के सामने हाथ न फैलाओ कि ऐसा करना कभी-कभी बेइज़्ज़ती की वजह बन जाता है।

(8) दुनिया के फ़ायदे थोड़े दिनों के हैं, इन्हें हासिल करने के लिए ज़्यादा दौड़-भाग मत करो।

(9) झूठ बोलना बहुत बड़ी बुराई है, हमेशा सच्चाई से काम लो।

(10) अपना काम खुद करो, दूसरों के मुहताज न बनो।

(11) बात हमेशा सीधी और साफ़ कहो, किसी को ग़लतफ़हमी में डालकर अपना मतलब न निकालो।

हज़रत उम्मे-सुम्बुला (रज़ि०)

तबरानी (रह०) और हैसमी (रह०) ने एक सहाबिया हज़रत उम्मे-सुम्बुला (रज़ि०) की चर्चा की है कि वे एक बार कोई हदिया (तोहफ़ा) लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों ने किसी वजह से उनका तोहफ़ा क़बूल करने से इनकार कर दिया। नबी (सल्ल०) ने अपनी पाक बीवियों से फ़रमाया कि उसका तोहफ़ा क़बूल कर लो। उन्होंने आप (सल्ल०) के हुक्म का पालन किया। नबी (सल्ल०) ने उम्मे-सुम्बुला (रज़ि०) को उस तोहफ़े के बदले एक जंगल जागीर के तौर पर दिया।

हज़रत क़ैला (रज़ि०)

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) ने एक सहाबिया हज़रत क़ैला (रज़ि०) की छोटी-सी चर्चा की है।

वे लिखते हैं कि हज़रत क़ैला (रज़ि०) बेवा हो गईं तो बच्चों को उनके चचा ने अपनी सरपरस्ती में ले लिया। इस तरह हज़रत क़ैला (रज़ि०) बच्चों की तरफ़ से बेफ़िक्र हो गईं, उसके बाद वे एक सहाबी के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और फिर उम्र-भर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर रहीं। यानी उन्होंने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर इल्म हासिल करना अपना मामूल बना लिया।

हज़रत उम्मे-इसहाक़ (रज़ि०)

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) और अबू-नुऐम (रह०) ने एक सहाबिया हज़रत उम्मे-इसहाक़ (रज़ि०) की चर्चा की है, जिन्होंने हिजरत से पहले इस्लाम क़बूल किया। लेकिन उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद मक्का से मदीना को हिजरत की।

वे ख़ुद रिवायत करती हैं कि मैंने अपने भाई के साथ मदीना की तरफ़ हिजरत की। रास्ते में मेरे भाई ने एक जगह मुझसे कहा, “उम्मे-इसहाक़, तुम यहाँ ठहरो, मैं अपना सामान मक्का में भूल आया हूँ, उसे जाकर वापस ले आऊँ।” मैंने कहा, “मुझे अपने मुशरिक शौहर का डर है कि कहीं वह तुम्हें कोई नुक़सान न पहुँचाए।” मेरे भाई ने कहा, “अल्लाह ने चाहा तो मैं महफ़ूज़ रहूँगा।”

उम्मे-इसहाक़ (रज़ि०) कहती हैं कि मैं कई दिन वहाँ ठहरी रही लेकिन मेरा भाई वापस न आया। एक दिन एक आदमी वहाँ से गुज़रा जिसको मैंने पहचान लिया। उसने मुझसे पूछा, “उम्मे-इसहाक़, तुम यहाँ किस लिए बैठी हो?”

मैंने कहा, “मैं अपने भाई का इन्तिज़ार कर रही हूँ जो कई दिन पहले मुझे यहाँ बिठाकर अपना सामान लेने मक्का गया है।” उस आदमी ने कहा, “अफ़सोस! तुम्हारे भाई को तुम्हारे शौहर ने क़त्ल कर दिया है और अब वह इस दुनिया में नहीं है।”

उसके बाद मैं लम्बे सफ़र की मुसीबतों को सहती मदीना पहुँची और नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई। उस वक़्त आप (सल्ल०) वुज़ू कर रहे थे। मैं आप (सल्ल०) के सामने खड़ी हो गई और रोते हुए कहने लगी, “ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे भाई को क़त्ल कर दिया गया है।”

नबी (सल्ल०) ने मेरी बात सुनकर एक मुट्ठी पानी लिया और मेरे चेहरे पर छिड़क दिया।

हज़रत उम्मे-हकीम (रज़ि०) कहती हैं कि इस घटना के बाद हज़रत उम्मे-इसहाक़ (रज़ि०) को ऐसी तस्कीन (सांत्वना) मिली कि बड़ी-से-बड़ी मुसीबत भी पड़ती तो वे रोती नहीं थीं, लेकिन उनकी आँखें भीग जाती थीं।

हज़रत उम्मे-मुंज़िर-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-मुंज़िर (रज़ि०) अंसार के किसी ख़ानदान से थीं। उन्हें नबी (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत और अक़ीदत थी। नबी (सल्ल०) को भी उनपर बहुत भरोसा था।

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि बनू-क़ुरैज़ा की लड़ाई के बाद हज़रत रैहाना (रज़ि०) भी क़ैद होकर आईं। नबी (सल्ल०) ने उन्हें हज़रत उम्मे-मुंज़िर-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) के घर में ठहराया।

हज़रत रैहाना (रज़ि०) ने इस्लाम क़बूल कर लिया तो नबी (सल्ल०) ने उन्हें आज़ाद करके अपने निकाह में ले लिया। दूसरी रिवायतों के मुताबिक़ आप (सल्ल०) ने उन्हें अपनी ख़ादिमा बनाकर रखा। लेकिन उसके बाद वे हज़रत उम्मे-मुंज़िर (रज़ि०) के घर से क़ैस-बिन-फ़हद के घर आ गईं और वहीं रहने लगीं।

हज़रत उम्मे-मुंज़िर (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत हव्वा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०)

हज़रत हव्वा (रज़ि०) मदीना की रहनेवाली थीं और औस क़बीले के ख़ानदान बनू-अब्दुल-अशहल से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : हव्वा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सिनान-बिन-कुर्ज-बिन-ज़ऊरा-बिन-अब्दुल-अशहल।

उनका निकाह क़ैस-बिन-ख़ुतैम से हुआ था। हज़रत हव्वा (रज़ि०)

बहुत नेक और समझदार ख़ातून थीं। नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही, पहली बैअते-अक़बा और दूसरी बैअते-अक़बा के बीच की मुद्दत में जब उन्होंने तौहीद का पैग़ाम सुना तो बिना किसी संकोच के फ़ौरन इस्लाम क़बूल कर लिया।

हालाँकि अभी शौहर कुफ़्र और शिर्क के अंधेरों में भटक रहे थे। वे हज़रत हव्वा (रज़ि०) के इस्लाम क़बूल करने पर सख़्त नाराज़ हुए और उन्हें तरह-तरह से सताने लगे। नमाज़ पढ़ना चाहतीं तो उससे रोकते। सजदा करने लगतीं तो गिरा देते, मारा-पीटा भी करते।

नबी (सल्ल०) को मदीना के कुछ मुसलमानों से हज़रत हव्वा (रज़ि०) की बेबसी और बेकसी का हाल मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) को बहुत अफ़सोस हुआ।

इत्तिफ़ाक़ से उसी ज़माने में क़ैस किसी काम से मक्का आए। नबी (सल्ल०) ने उनको इस्लाम की दावत दी। उन्होंने यह कहकर मुहलत चाही कि मैं अभी आपकी दावत पर गौर करना चाहता हूँ।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बेशक, तुम ख़ूब सोच-विचार कर लो लेकिन अपनी बीवी को इस्लाम कुबूल करने की वजह से मत सताओ और उससे अच्छा बरताव करो।"

क़ैस ने वादा किया कि अब मैं हव्वा को नहीं सताऊँगा। मदीना पहुँचकर उन्होंने अपना वादा पूरा किया और हज़रत हव्वा (रज़ि०) से अच्छा बरताव करने लगे। नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने क़ैस के वादा पूरा करने पर खुशी ज़ाहिर की। अनुमान है कि क़ैस ने भी बाद में इस्लाम क़बूल कर लिया था।

हज़रत हव्वा (रज़ि०) की गिनती अंसार की साबिक़ीनल-अव्वलीन यानी मदीना में बिलकुल शुरू के मुसलमानों की जमाअत में होती है।

हज़रत हव्वा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत ख़ुलैदा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०)

हज़रत ख़ुलैदा (रज़ि०) अंसार की उन औरतों में से हैं जिन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले इस्लाम क़बूल कर लिया था।

नसब का सिलसिला यह है : ख़ुलैदा-बिन्ते-क़ैस-बिन-साबित-बिन-ख़ालिद-बिन-अशजा।

उनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत बरा-बिन-मारूर अंसारी (रज़ि०) से हुआ। वे ख़ज़रज क़बीले के बनू-सलिमा ख़ानदान के सरदार थे। उनके एक बेटे बिश्र (रज़ि०) और एक बेटी सुलाफ़ा (रज़ि०) थीं। इन दोनों को सहाबी होने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई।

बिश्र (रज़ि०) दूसरी बैअते-अक़बा (सन् 13 नबवी) में अपने बाप के साथ शरीक थे। बाप-बेटे ने इस बैअत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। हज़रत बरा-बिन-मारूर (रज़ि०) का इन्तिक़ाल नबी (सल्ल०) की हिजरत से सिर्फ़ एक महीना पहले हुआ। नबी (सल्ल०) मदीना तशरीफ़ लाए तो हज़रत बिश्र (रज़ि०) को उनके बाप की जगह बनू-सलमा का सरदार बना दिया। ख़ैबर की लड़ाई में हज़रत बिश्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के साथ थे। इसी लड़ाई के मौक़े पर नबी (सल्ल०) को बकरी के गोश्त में ज़हर दिया गया था। उसके खानेवालों में हज़रत बिश्र (रज़ि०) भी शामिल थे। उसी ज़हर के असर से उनका इन्तिक़ाल हुआ।

बयान किया जाता है कि जब नबी (सल्ल०) का आख़िरी वक़्त आया और आप (सल्ल०) बीमार हुए तो हज़रत ख़ुलैदा (रज़ि०) आपका हाल पूछने आईं और नबी (सल्ल०) के मुबारक जिस्म पर हाथ रखकर बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! ऐसा तेज़ बुख़ार मैंने किसी का नहीं देखा।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिस तरह हमको दूसरों से ज़्यादा अज्र

दिया जाता है, उसी तरह तकलीफ़ भी दूसरों से दोगुनी होती है।" फिर पूछा, "लोगों का मेरी बीमारी के बारे में क्या ख़याल है?" उन्होंने कहा, "उनका अन्दाज़ा है कि अल्लाह के रसूल को पसलियों का दर्द (निमोनिया) है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह इस बला से मुझे महफ़ूज़ रखना! यह तो उस ज़हर का असर है जो मैंने और तेरे बेटे ने ख़ैबर में खाया था, यह अन्दर ही अन्दर काम करता रहा।"

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) बयान करते हैं कि एक बार हज़रत ख़ुलैदा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मुर्दे भी पहचाने जाते हैं?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पाक रूह तो जन्नत में एक हरे परिन्दे की तरह है, अगर परिन्दे पेड़ के पत्तों में पहचाने जाते हैं तो वे भी पहचाने जा सकते हैं।"

हज़रत ख़ुलैदा (रज़ि०) से कुछ हदीसें भी रिवायत की गई हैं। उनकी बेटी सुलाफ़ा (रज़ि०) मशहूर सहाबी हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि०) की बीवी थीं। हज़रत ख़ुलैदा (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात नहीं मिलते।

हज़रत कब्शा-बिन्ते-मान अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत कब्शा-बिन्ते-मान (रज़ि०) का ताल्लुक़ अंसार के किसी क़बीले से था। उनका निकाह हज़रत अबू-क़ैस-बिन-असलत अंसारी (रज़ि०) से हुआ। उनका इन्तिक़ाल हो गया और हज़रत कब्शा (रज़ि०) बेवा हो गईं तो उनके सौतेले बेटे ने जाहिलियत की रस्म के मुताबिक़ उनके निकाह का वारिस होने का दावा किया। हज़रत कब्शा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और आप (सल्ल०) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे मरहूम शौहर के रिश्तेदारों से

मेरा पीछा छुड़ाइए ताकि मैं दूसरी जगह निकाह कर सकूँ।"

उस वक़्त सूरा निसा की यह आयत नाज़िल हुई—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुम्हारे लिए यह हलाल नहीं है कि ज़बरदस्ती औरतों के वारिस बन बैठो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-19)

इस आयत के नाज़िल होने के बाद नबी (सल्ल०) ने बेवा हो जानेवाली औरतों को पूरा इख़्तियार दिया कि वे इद्दत गुज़ारने के बाद जहाँ चाहें निकाह कर लें।

हज़रत उम्मे-हिशाम अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-हिशाम (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हारिसा-बिन-नोमान (रज़ि०) की बेटी थीं। उनको नबी (सल्ल०) से बड़ी अक़ीदत और मुहब्बत थी। जुमा की नमाज़ पाबन्दी से मस्जिद में जाकर नबी (सल्ल०) के पीछे पढ़ा करती थीं। सहीह मुस्लिम में उनसे रिवायत है कि मैंने सूरा क़ाफ़ को नबी (सल्ल०) की ज़बान से सीखा है जिसे आप (सल्ल०) हर जुमा के दिन मिम्बर पर खुत्बे में पढ़ते थे।

और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत अबू-हुमैद साइदी (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)

ये अंसार के किसी क़बीले से थीं और मशहूर सहाबी हज़रत अबू-हुमैद साइदी अंसारी (रज़ि०) की बीवी थीं। उनको नबी (सल्ल०) से बेहद अक़ीदत व मुहब्बत थी और इबादत से भी बड़ा लगाव था। एक बार नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, मेरा दिल बहुत चाहता है कि आपके पीछे नमाज़ पढ़ा करूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं जानता हूँ कि तुम मेरे साथ नमाज़

पढ़ना पसन्द करती हो लेकिन तुम्हारा अपनी कोठरी में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तुम घर के दूसरे कमरों में नमाज़ पढ़ो और तुम्हारा घर के किसी कमरे में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तुम घर के आँगन में किसी जगह नमाज़ पढ़ो और तुम्हारा घर के आँगन में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तुम अपने मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ो और तुम्हारा मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तुम मेरी मस्जिद में नमाज़ पढ़ो।" नबी (सल्ल०) का हुक्म सुनकर उन्होंने अपने घर के एक कोने में अपने लिए नमाज़ की जगह बनवाई और जब तक ज़िन्दा रहीं वहीं नमाज़ अदा करती रहीं।

इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत अज़दा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

ये अरब के मशहूर तबीब (चिकित्सक) हारिस-बिन-कलदा सक़फ़ी की बेटी और बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत उत्बा-बिन-ग़ज़वान (रज़ि०) की बीवी थीं। इन्होंने इराक़-अरब की कई लड़ाइयों में अपने शौहर के साथ मुजाहिदों की तरह हिस्सा लिया।

तबरी ने लिखा है कि दजला नदी के पास मैसान के लोगों और मुसलमानों के बीच घमासान की लड़ाई हुई। इस्लामी फ़ौज के कमांडर हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) औरतों को लड़ाई के मैदान से बहुत पीछे छोड़ आए थे। जिस वक़्त दोनों फ़ौजों में घमासान की जंग हो रही थी, हज़रत अज़दा (रज़ि०) ने औरतों से कहा कि इस वक़्त हमें मुसलमानों की मदद करनी चाहिए। यह कहकर उन्होंने अपने दुपट्टे से एक बड़ा झण्डा बनाया। दूसरी औरतों ने भी अपने-अपने दुपट्टों के छोटे-छोटे झण्डे बना लिए। फिर वे सब झण्डे लहराती लड़ाई के मैदान के पास पहुँच गईं। मैसानवालों ने समझा कि मुसलमानों की मदद के लिए नई फ़ौज आ गई है। उनकी हिम्मत टूट गई और वे लड़ाई के मैदान से भाग खड़े हुए।

हज़रत उत्बा-बिन-ग़ज़वान (रज़ि०) ने जब मदीनतुल-फ़ुरात के लोगों होनवाली से लड़ाई में हिस्सा लिया तो हज़रत अज़दा (रज़ि०) भी उनके साथ थीं। वे अपनी तक़रीरों से लोगों को उभारती और जोश दिलाती थीं।

कुछ रिवायतों में उनका नाम अरदा आया है।

हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०)

वाक़िदी का बयान है कि उम्मे-अबान (रज़ि०) उत्बा-बिन-रबीआ़ की बेटी थीं। अगर यह बात दुरुस्त है तो वे हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि०) की बीवी और अमीर मुआविया (रज़ि०) की माँ हिन्द-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०) की बहन हैं।

उन्होंने सीरिया की कई लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी दिखाई। उनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत अबान-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) से हुआ था।

दमिश्क़ की लड़ाई में जब हज़रत अबान-बिन-सईद को दमिश्क़ के हाकिम तोमा ने शहीद कर दिया तो हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०) ने उसी वक़्त यह ठान लिया कि वे अपने शौहर का बदला लेंगी। फिर वे अपने शहीद शौहर के हथियार लगाकर लड़ाई के मैदान में पहुँच गईं और देर तक रूमियों का मुक़ाबला करती रहीं।

रूमियों ने शहर में घुसकर दरवाज़े बन्द कर दिए और चारदीवारी के बुर्जों से मुसलमानों पर तीर और पत्थर बरसाने लगे। एक बुर्ज में उनका बड़ा पादरी सोने की सलीब हाथ में लिए जीत की दुआ माँग रहा था। हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०) बहुत अच्छा तीर चलाती थीं। उन्होंने ताककर ऐसा तीर मारा कि सलीब उसके हाथ से छूटकर क़िले के नीचे गिर पड़ी। मुसलमानों ने दौड़कर उसे उठा लिया। उसपर रूमी भड़क उठे। उन्होंने शहर का बड़ा दरवाज़ा खोल दिया और मुसलमानों पर

ज़बरदस्त हमला किया। हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०) ने रूमियों पर तीरों की ऐसी बारिश की कि वे बिलबिला उठे। दमिश्क़ का हाकिम तोमा किसी तरह पीछे हटने का नाम नहीं ले रहा था, हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०) ने उसकी आँख का निशाना लगाकर ऐसा तीर मारा कि वह चीख़ता हुआ पीछे भाग गया। उस वक़्त उम्मे-अबान (रज़ि०) रजज़ के ये अशआर पढ़ रही थीं।

उम्मे-अबान तू अपना इन्तिक़ाम ले,
उनपर हमले-पे-हमले किए जा,
रूमी तेरे तीरों से चीख़ उठें।

हज़रत उम्मे-अबान (रज़ि०) ने शहूरा की लड़ाई और अन्ताकिया की लड़ाई में भी इसी तरह के हैरतनाक कारनामे अंजाम दिए।

हज़रत उम्मे-मिस्तह (रज़ि०)

असल नाम मालूम नहीं है। मशहूर सहाबी मिस्तह-बिन-असासा (रज़ि०) की माँ और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की क़रीबी रिश्तेदार थीं। सीरत-निगारों ने स्पष्ट नहीं किया है कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से उनका क्या रिश्ता था। कुछ ने लिखा है कि वे उनकी ख़ाला थीं और कुछ का ख़याल है कि वे उनकी ख़ाला की बेटी थीं।

हज़रत उम्मे-मिस्तह (रज़ि०) इस्लाम के बिलकुल शुरू के ज़माने में ईमान ले आई थीं। वे बहुत पक्के अक़ीदेवाली और साबित-क़दम मोमिना थीं। इफ़्क की घटना में जब मुनाफ़िक़ों ने उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) पर लांछन लगाया तो कुछ सीधे-सादे मुसलमान भी उनके धोखे में आ गए। उनमें हज़रत मिस्तह (रज़ि०) भी थे। बनू-मुस्तलिक़ की लड़ाई से वापस आकर जब उन्होंने यह घटना अपनी माँ से बयान की तो वे बहुत नाराज़ हुई और बेटे को बहुत-कुछ बुरा-भला कहा।

उसी ज़माने में एक रात हज़रत उम्मे-मिस्तह (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन के साथ शौच-कर्म के लिए आबादी से बाहर जा रही थीं कि रास्ते में किसी चीज़ से ठोकर लगी। उनका दिल बेटे की तरफ़ से दुखा हुआ था, मुँह से बेइख़्तियार मिस्तह के लिए बद-दुआ निकली। उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "अम्मा, आपका बेटा बद्री सहाबी है, आप उसको बद-दुआ देती हैं!"

उम्मे-मिस्तह (रज़ि०) ने कहा, "ख़ुदा उसे बरबाद करे, वह लोगों के कहने-सुनने में आकर झूठा आरोप लगानेवालों में शामिल हो गया है।" उसके बाद सारी घटना हज़रत आइशा (रज़ि०) को सुनाई। वे सकते में आ गईं।

जब अल्लाह ने उनकी पाकदामनी का एलान कर दिया तो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) हज़रत मिस्तह (रज़ि०) से बहुत नाराज़ और रंजीदा हुए क्योंकि वे न सिर्फ़ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के क़रीबी रिश्तेदार थे बल्कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) रुपये-पैसों से उनकी मदद भी किया करते थे इसके बावजूद वे मुनाफ़िक़ों के बहकावे में आ गए थे। इसी नाराज़ी की वजह से हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने उनकी मदद करना छोड़ दिया। इसपर अल्लाह का हुक्म नाज़िल हुआ—

> "तुममें से जो लोग मालदार और ख़ुशहाल हैं वह इस बात की क़सम न खा बैठें कि अपने रिश्तेदारों, मुहताजों और अल्लाह की राह में घर छोड़नेवाले लोगों की मदद न करेंगे। उन्हें माफ़ कर देना चाहिए और जाने देना चाहिए।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-22)

इस हुक्म के नाज़िल होने पर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) फिर से उनकी मदद करने लगे। हज़रत मिस्तह (रज़ि०) को अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ दण्ड दिया गया। अगर उम्मे-मिस्तह (रज़ि०) अपने बेटे को बचाना चाहतीं तो वे बच सकते थे, लेकिन उन्होंने किसी क़िस्म के नतीजे की परवाह न करके सच्चाई से काम लिया।

हज़रत हिन्द-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत हिन्द-बिन्ते-अम्र (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज क़बीले की शाख़ बनू-सलिमा से था।

नसब का सिलसिला यह है : हिन्द-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम-बिन-सअ़लबा-बिन-हराम-बिन-काब-बिन-ग़न्म-बिन-सलिमा-बिन-साद-बिन-लिअली-बिन-असद-बिन-सारिदा-बिन-तज़ीद-बिन-जुशम-बिन-ख़ज़रज।

हज़रत हिन्द (रज़ि०) की शादी अंसार के सरदार हज़रत अम्र-बिन-जमूह (रज़ि०) से हुई थी, उनकी गिनती अंसार के बुलन्द मर्तबा सहाबियों में होती है, लेकिन हज़रत हिन्द (रज़ि०) इस्लाम क़बूल करने में उनसे भी आगे हैं। हज़रत अम्र-बिन-जमूह (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद, बद्र की लड़ाई से कुछ पहले इस्लाम क़बूल किया जबकि उनके बेटे मुआज़ (रज़ि०) और बीवी हिन्द (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले इस्लाम क़बूल किया। हज़रत मुआज़-बिन-अम्र-बिन-जमूह (रज़ि०) को दूसरी बैअते-अक़बा में भी शामिल होने का मौक़ा मिला।

हज़रत हिन्द (रज़ि०) बड़ी पक्की मुसलमान थीं और उनको नबी (सल्ल०) से बड़ी मुहब्बत और अक़ीदत थी। सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई के मौक़े पर उन्होंने सब्र व हौसले, ईमान पर साबित-क़दमी और नबी (सल्ल०) से मुहब्बत का ऐसा हैरतअंगेज़ प्रदर्शन किया कि तारीख़ (इतिहास) में शायद ही इसकी कोई मिसाल मिलती हो।

उहुद की लड़ाई में हज़रत हिन्द (रज़ि०) के शौहर हज़रत अम्र-बिन-जमूह (रज़ि०), बेटे ख़ल्लाद-बिन-अम्र (रज़ि०) और भाई हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-हराम (रज़ि०) तीनों बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए।

हज़रत हिन्द (रज़ि०) ने शौहर, बेटे और भाई के शहीद होने की

ख़बर सुनी तो न रोईं-चिल्लाईं, न ग़म मनाया बल्कि पूछने लगीं, "मुझे यह बताओ कि नबी (सल्ल०) का क्या हाल है? उनको तो कुछ नहीं हुआ?"

जब लोगों ने बताया कि अल्लाह की मेहरबानी से नबी (सल्ल०) बिलकुल अच्छे हैं तो उनका चेहरा ख़ुशी से खिल उठा। वे लड़ाई के मैदान की तरफ़ आईं, नबी (सल्ल०) को देखा तो वे बेइख़्तियार कह उठीं, "आप सलामत हैं तो सारी मुसीबतें कुछ भी नहीं हैं।"

एक रिवायत में है कि हज़रत हिन्द (रज़ि०) एक ऊँट अपने साथ ले गई थीं। उसपर अपने शौहर, बेटे और भाई की लाशें लादकर मदीना आ रही थीं, रास्ते में उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) मिलीं जो कुछ दूसरी औरतों के साथ नबी (सल्ल०) का हाल मालूम करने उहुद के मैदान की तरफ़ जा रही थीं। (उस वक़्त तक परदे की आयत नाज़िल नहीं हुई थी) उम्मुल-मोमिनीन ने हज़रत हिन्द (रज़ि०) से नबी (सल्ल०) का हाल पूछा। उन्होंने कहा, "अल्लाह की मेहरबानी से नबी (सल्ल०) बिलकुल अच्छे हैं और ये लाशें मेरे शौहर, भाई और बेटे की हैं, जिन्होंने लड़ाई में शहादत पाई।"

इतने में उनका ऊँट ज़मीन पर बैठ गया। उसे बहुत हाँका गया लेकिन उसने मदीना की तरफ़ एक क़दम न बढ़ाया। उम्मुम-मोमिनीन ने फ़रमाया, "शायद बोझ ज़्यादा है।" हज़रत हिन्द (रज़ि०) ने कहा, "नहीं उम्मुल-मोमिनीन, इसपर तो इससे ज़्यादा बोझ लादा जाता है।"

फिर जब ऊँट को उहुद की तरफ़ हाँका तो वह फ़ौरन चल पड़ा। हज़रत हिन्द (रज़ि०) तीनों शहीदों की लाशें नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में ले गईं। उस वक़्त आप (सल्ल०) दूसरे शहीदों की लाशें दफ़न करा रहे थे। आप (सल्ल०) ने हिन्द (रज़ि०) से पूछा, "क्या इनमें किसी ने घर से चलते वक़्त कुछ कहा था?"

हज़रत हिन्द (रज़ि०) ने कहा, "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे शौहर

अम्र-बिन-जमूह ने घर से चलते वक़्त यह दुआ माँगी थी कि ऐ अल्लाह मुझे शहादत नसीब फ़रमाना और मुझको अपने बाल-बच्चों में नाउम्मीद वापस न लाना।" उसके बाद नबी (सल्ल०) ने तीनों शहीदों को उहुद के मैदान में दूसरे शहीदों के साथ अपने सामने दफ़न कराया।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम अंसारिया (रज़ि०)

ये हज़रत हिन्द-बिन्ते-अम्र-बिन-हराम (रज़ि०) की बहन थीं। उनको अपने भाई हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) से बड़ी मुहब्बत थी। उन्होंने उहुद की लड़ाई में शहादत पाई तो इस्लाम के दुश्मनों ने बड़ी बेदर्दी से उनकी लाश बिगाड़ दी, यानी नाक, कान, होंठ काट डाले। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) अपने भतीजे जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) के साथ लड़ाई के मैदान में पहुँचीं। भाई की लाश देखकर उनकी चीख़ निकल गई। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "यह किसकी आवाज़ है?" लोगों ने कहा, "अब्दुल्लाह की बहन की।" जब हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को दफ़न करने के लिए ले जाया जाने लगा तो हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) फूट-फूटकर रोने लगीं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम रोओ या न रोओ, जब तक अब्दुल्लाह का जनाज़ा रखा रहा, फ़रिश्तों ने उसपर अपने परों का साया कर रखा था।" यह सुनकर वे ख़ामोश हो गईं।

और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत हब्ता-बिन्ते-मालिक अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत हब्ता-बिन्ते-मालिक (रज़ि०) का ताल्लुक़ औस क़बीले के अम्र-बिन-औफ़ ख़ानदान से था। इनकी शादी बुजैर-बिन-मुआविया बजली से हुई, जिनका क़बीला अम्र-बिन-औफ़ का मददगार था। बुजैर का इन्तिक़ाल जाहिलियत के ज़माने में ही हो गया था।

हज़रत हब्ता (रज़ि०) ने इस्लाम का ज़माना पाया, इस्लाम क़बूल किया और सहाबियात में शामिल हुईं। उनके एक बेटे साद थे, वे भी माँ के साथ ईमान लाए और माँ ही के नाम की निस्बत से साद-बिन-हब्ता (रज़ि०) मशहूर हुए। उनकी गिनती अंसार के बुलन्द मर्तबा सहाबियों में होती है।

इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) के शागिर्द इमाम अबू-यूसुफ़ (रह०) हज़रत साद-बिन-हब्ता (रज़ि०) ही की औलाद में से थे।

हज़रत हब्ता (रज़ि०) के और हालात किताबों में नहीं मिलते।

हज़रत रबाब-बिन्ते-काब अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत रबाब (रज़ि०) औस क़बीले के ख़ानदान अब्दुल-अशहल में से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : रबाब-बिन्ते-काब-बिन-अदी-बिन-अब्दुल-अशहल।

उनका निकाह हुसैल-बिन-जाबिर अब्सी (रज़ि०) से हुआ था। हज़रत हुसैल (रज़ि०) उहुद की लड़ाई में शहीद हुए। हज़रत रबाब (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही अपने शौहर के साथ इस्लाम क़बूल किया था। बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत हुज़ैफ़ा-बिन-हुसैल (रज़ि०) उनके ही बेटे हैं।

हज़रत रबाब (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बड़ी अक़ीदत और मुहब्बत थी। अपने बेटे हुज़ैफ़ा (रज़ि०) को पाबन्दी से नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में भेजा करती थीं। एक बार हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) कई दिनों तक नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर नहीं हुए। हज़रत रबाब (रज़ि०) को मालूम हुआ तो पूछा कि तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में कब से नहीं गए? उन्होंने मुद्दत बताई तो बहुत नाराज़ हुईं और बेटे को बुरा-भला कहा।

हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) ने कहा, “अच्छा अब जाता हूँ, मग़रिब की नमाज़ नबी (सल्ल०) के साथ पढ़ूँगा और नबी (सल्ल०) से अपने लिए और आपके लिए मग़फ़िरत की दुआ कराऊँगा।”

यह कहकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और नमाज़ पढ़कर आप (सल्ल०) के पीछे-पीछे चल पड़े। नबी (सल्ल०) ने पीछे मुड़कर देखा तो फ़रमाया, “कौन, हुज़ैफ़ा?” उन्होंने कहा, “जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल!” नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, “ख़ुदा तुम्हारी और तुम्हारी माँ दोनों की मग़फ़िरत करे।”

हज़रत रबाब (रज़ि०) के और हालात नहीं मिलते।

हज़रत क़ुर्रतुल-ऐन-बिन्ते-उबादा अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत क़ुर्रतुल-ऐन (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि०) की माँ थीं और वे उबादा-बिन-फ़ज़्ला-बिन-मालिक-बिन-अजलान की बेटी थीं। हज़रत उबादा-बिन-सामित अंसार के साबिक़ीनल-अव्वलीन, यानी मदीना में इस्लाम के आते ही ईमान लानेवालों में से हैं। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ वे अक़बा की तीनों बैअतों में शामिल थे, और कुछ के मुताबिक़ वे दूसरी बैअते-अक़बा, जो सन् 12 नबवी में हुई, जिसमें बारह आदमियों ने इस्लाम क़बूल किया था, और सन् 13 नबवी में होनेवाली तीसरी बैअते-अक़बा में शामिल हुए।

वे मक्का से मुसलमान होकर घर पहुँचे तो उनकी दावत पर सबसे पहले उनकी माँ ने इस्लाम क़बूल किया। इस तरह से वे भी नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ईमान लाईं और उन्हें भी अंसार के साबिक़ीनल-अव्वलीन में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल है।

और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत उक़्बा-बिन्ते-मुहम्मद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उक़्बा (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत फ़ज़ाला-बिन-उबैद अंसारी (रज़ि०) की माँ थीं और मुहम्मद-बिन-उक़्बा-बिन-जल्लाह की बेटी थीं। मदीना में जैसे ही इस्लाम की रौशनी पहुँची, वे अपने बेटे फ़ज़ाला (रज़ि०) के साथ मुसलमान हो गईं और सहाबियात में शामिल हुईं।

उनके शौहर उबैद-बिन-नाक़िद क़बीला औस के ख़ानदान अम्र-बिन-औफ़ में से थे। वे अपने क़बीले के सरदार थे। वे न सिर्फ़ बड़े बहादुर थे बल्कि शेर और शायरी में भी काफ़ी दिलचस्पी रखते थे। उनका इन्तिक़ाल जाहिलियत के ज़माने में ही हो गया था। बीवी और बेटे दोनों ने इस्लाम का ज़माना पाया और नबी (सल्ल०) के जाँनिसारों में शामिल हुए।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत फ़ुरैआ-बिन्ते-ख़ालिद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) ख़ज़रज क़बीले के ख़ानदान साइदा से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : फ़ुरैआ-बिन्ते-ख़ालिद-बिन-ख़ुनैस-बिन-लूज़ान-बिन-अब्दे-वुद-बिन-ज़ैद-बिन-सअलबा-बिन-ख़ज़रज-बिन-काब-बिन-साईदा।

उनका निकाह साबित-बिन-मुंज़िर से हुआ जो अपने क़बीले बनू-नज्जार के बड़े लोगों में से थे। उन्हीं के बेटे हज़रत हस्सान (रज़ि०) थे, जो कि शायरे-रसूलुल्लाह के लक़ब से मशहूर हैं। उनकी गिनती अरब के मशहूर शायरों में होती है।

हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) के बुढ़ापे का ज़माना था जब इस्लाम का सूरज निकला। हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) उस वक़्त बेवा थीं। उन्होंने अपने बेटे हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) के साथ इस्लाम क़बूल किया और नबी (सल्ल०) से बैअत की खुशनसीबी हासिल की। इस्लाम क़बूल करने के वक़्त ख़ुद हज़रत हस्सान (रज़ि०) की उम्र लगभग साठ साल थी। हज़रत हस्सान (रज़ि०) ने अपने एक शेर में हज़रत फ़ुरैआ (रज़ि०) के बेटे होने पर गर्व ज़ाहिर किया है।

हज़रत उम्मे-तुफ़ैल अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-तुफ़ैल (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा और मशहूर सहाबी हज़रत उबई-बिन-काब (रज़ि०) की बीवी थीं। अपने शौहर की बहुत ख़िदमत-गुज़ार थीं। उन्हें नबी (सल्ल०) से भी बड़ी अक़ीदत और मुहब्बत थी। उन्होंने कई हदीसें रिवायत की है। उनके बेटे तुफ़ैल (रज़ि०) सहाबियों में शामिल हैं।

और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत सुहैला-बिन्ते-मसऊद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत सुहैला-बिन्ते-मसऊद (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) की बीवी थीं। उनका ताल्लुक़ अंसार के क़बीले ज़फ़र से था। उनके पहले शौहर का इन्तिक़ाल उहुद की लड़ाई से पहले हो चुका था।

हज़रत जाबिर (रज़ि०) के बाप अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-हराम (रज़ि०) का जब इन्तिक़ाल हुआ तो हज़रत जाबिर (रज़ि०) के अलावा उनकी छः (दूसरी रिवायतों के मुताबिक़ नौ या दस) कमसिन बेटियाँ थीं। उनकी देखभाल और परवरिश के लिए हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने सुहैला-बिन्ते-मसऊद (रज़ि०) से निकाह कर लिया। नबी (सल्ल०) को

मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जाबिर तुमने एक बेवा से निकाह किया है, अगर किसी कुँआरी से करते तो वह तुमसे हँसती-खेलती और तुम उससे हँसते-खेलते।"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! बहनें छोटी थीं, इसलिए होशियार औरत की ज़रूरत थी, जो उनके बाल सँवारती, कपड़े सीकर पहनाती, देखभाल करती।" (हज़रत जाबिर (रज़ि०) की माँ का इन्तिक़ाल पहले ही हो चुका था।) नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुमने ठीक किया।"

हज़रत सुहैला (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बहुत अक़ीदत और मुहब्बत थी। हज़रत जाबिर (रज़ि०) कभी नबी (सल्ल०) की दावत करते तो बड़े शौक़ और लगन से खाना तैयार करतीं। निकाह के कुछ दिनों के बाद हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने अपने शहीद बाप का क़र्ज़ अदा करने की ख़ुशी में नबी (सल्ल०) की दावत की। नबी (सल्ल०) हज़रत जाबिर (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए तो उन्होंने गोश्त, खजूरें और पानी पेश किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "शायद तुम्हें मालूम है कि मैं गोश्त शौक़ से खाता हूँ।" जब खाना खाकर नबी (सल्ल०) वापस जाने लगे तो हज़रत सुहैला (रज़ि०) ने अन्दर से आवाज़ दी, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे और मेरे शौहर के लिए रहमत और सलामती की दुआ कीजिए।"

आप (सल्ल०) ने फ़ौरन फ़रमाया, "ऐ अल्लाह, इनपर रहमत और सलामती नाज़िल कर!"

ख़न्दक़ की लड़ाई के ज़माने में एक दिन हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने देखा कि नबी (सल्ल०) ने तीन दिनों से कुछ नहीं खाया है और आप (सल्ल०) के मुबारक पेट पर पत्थर बँधा हुआ है। वे तड़प उठे और उसी वक़्त जाकर हज़रत सुहैला (रज़ि०) से कहा, "नबी (सल्ल०) भूखे हैं, कुछ है तो पका लो।" थोड़े-से जौ घर में रखे थे, हज़रत सुहैला (रज़ि०)

ने उसे पीसकर आटा गूँधा। हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने बकरी का एक बच्चा ज़िब्ह किया और गोश्त देग्ची में डालकर चूल्हे पर रख दिया। फिर वे नबी (सल्ल०) को लेने गए। सुहैला (रज़ि०) बहुत ख़ुद्दार थीं, बोलीं, "दो-तीन लोगों का खाना है। नबी (सल्ल०) के साथ ज़्यादा लोगों को न लाना, ऐसा न हो कि हमें शर्मिन्दगी उठानी पड़े।"

हज़रत जाबिर (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और चुपके से बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमने आपके खाने का इन्तिज़ाम किया है, आप कुछ लोगों के साथ तशरीफ़ ले चलें।" नबी (सल्ल०) ने उनकी दावत क़बूल फ़रमा ली और साथ ही यह एलान करा दिया कि जाबिर (रज़ि०) ने सारे ख़न्दक़वालों को खाने पर बुलाया है।

हज़रत जाबिर (रज़ि०) बड़े परेशान हुए लेकिन नबी (सल्ल०) के अदब से ख़ामोश रहे। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि चुल्हे से देग्ची न उतारना और जब तक मैं न आऊँ, रोटी न पकाना। फिर आप (सल्ल०) सभी ख़न्दक़वालों को लेकर हज़रत जाबिर (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए और खाने में बरकत की दुआ की। उसका असर यह हुआ कि नबी (सल्ल०) और तमाम सहाबियों ने पेट भरकर खाना खाया फिर भी खाना बच गया। नबी (सल्ल०) ने हज़रत सुहैला (रज़ि०) से फ़रमाया, "यह तुम खाओ और लोगों के यहाँ भी भेजो क्योंकि लोग भूखे हैं।"

मुसनद अहमद में है कि एक बार हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में बहुत ही अच्छे क़िस्म के छुहारे जिन में गुठली नहीं थी, पेश किए। आप (सल्ल०) ने देखकर फ़रमाया, "मैं समझा था, गोश्त है।" हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने उसी वक़्त हज़रत सुहैला (रज़ि०) से कहा और उन्होंने फ़ौरन बकरी ज़िब्ह की, गोश्त पकाया और नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश किया।

हज़रत सुहैला (रज़ि०) के इससे ज़्यादा हालात तारीख़ में कहीं नहीं मिलते।

हज़रत मुलैका-बिन्ते-मालिक अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत मुलैका (रज़ि०) ख़ज़रज के इज़्ज़तदार ख़ानदान बनू-नज्जार से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : मुलैका-बिन्ते-मालिक-बिन-अदी-बिन-ज़ैद-बिन-मनात-बिन-अदी-बिन-अम्र-बिन-मालिक-बिन-नज्जार।

इनका निकाह मिलहान-बिन-ख़ालिद नज्जारी से हुआ। हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-हराम (रज़ि०) इनकी बेटियाँ थीं, इन दोनों की गिनती बुलन्द मर्तबा सहाबियात में होती है। नबी (सल्ल०) के ख़ादिम हज़रत अनस (रज़ि०) हज़रत उम्मे-सुलैम (रज़ि०) के बेटे थे, इस तरह से हज़रत मुलैका (रज़ि०) हज़रत अनस (रज़ि०) की नानी थीं। ख़याल यह है कि उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत से कुछ पहले अपनी बेटियों के साथ इस्लाम क़बूल किया।

सहीह बुख़ारी में है कि एक बार हज़रत मुलैका (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की दावत की और खुद खाना तैयार किया। नबी (सल्ल०) ने खाने के बाद फ़रमाया, "आओ मैं तुमको नमाज़ पढ़ाऊँ।" घर में सिर्फ़ एक पुरानी चटाई थी जिसका रंग काला पड़ चुका था। हज़रत अनस (रज़ि०) ने उसको पहले पानी से धोया और फिर नमाज़ के लिए बिछाया।

नबी (सल्ल०) ने नमाज़ पढ़ाई। हज़रत मुलैका (रज़ि०), हज़रत अनस (रज़ि०) और एक यतीम (ग़ुलाम) लड़का सफ़ में पीछे खड़े हुए। नबी (सल्ल०) ने दो रकआत नमाज़ पढ़ाई और वापस तशरीफ़ ले गए।

इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-सैफ़ अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) का असली नाम मालूम नहीं है। ये अपनी कुन्नियत से ही मशहूर हैं। उन्होंने नबी (सल्ल०) के बेटे इबराहीम को दूध पिलाया था। इबराहीम सन् 8 हिजरी में हज़रत मारिया क़िब्तीया (रज़ि०) की कोख से पैदा हुए तो अंसार की तमाम औरतों ने यह ख़ाहिश ज़ाहिर की कि बच्चे को दूध पिलाने की ज़िम्मेदारी उन्हें दी जाए। लेकिन नबी (सल्ल०) ने इस काम के लिए हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) को चुना।

हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) अवाली में रहती थीं जिसकी दूरी मदीना से क़रीब तीन-चार मील है। नबी (सल्ल०) इबराहीम को देखने के लिए थोड़े-थोड़े दिनों में पैदल ही उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले जाते। बच्चे को गोद में लेते, मुँह चूमते फिर मदीना वापस आते। हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) के शौहर लोहार थे इसलिए उनके घर में धुआँ भरा रहता था। नबी (सल्ल०) अपनी सफ़ाई पसन्द तबीअत के बावजूद धुएँ को बरदाश्त कर लेते थे।

इबराहीम का इन्तिक़ाल हज़रत उम्मे-सैफ़ (रज़ि०) के घर पर ही हुआ। नबी (सल्ल०) को ख़बर मिली तो हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) के साथ तशरीफ़ लाए। उस वक़्त इबराहीम का आख़िरी वक़्त था। नबी (सल्ल०) ने उन्हें गोद में ले लिया और आप (सल्ल०) की आँखों से आँसू बह निकले।

हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपकी यह क्या हालत है?"

फ़रमाया, "यह रहमत और शफ़क़त है।"

हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने दोबारा अपनी बात दोहराई तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आँखें आँसू बहाती हैं, दिल ग़मगीन है, लेकिन

हम वही कहेंगे जो हमारे रब की मरज़ी हो। ऐ इबराहीम हम तेरी जुदाई में बहुत ग़मगीन हैं!”

इबराहीम की ज़िन्दगी की मुद्दत के बारे में सीरत-निगारों में मतभेद है। उनकी कम-से-कम उम्र दो महीने दस दिन और ज़्यादा-से-ज़्यादा एक साल दस महीने छः दिन बताई गई है। इसी के मुताबिक़ उनके दूध पिलाने का ज़माना भी मुक़र्रर किया जा सकता है।

हज़रत उम्मे-सैफ़ के और हालात मालूम नहीं लेकिन उनकी यही फ़ज़ीलत बहुत बड़ी है कि उन्हें नबी (सल्ल०) के प्यारे बेटे को दूध-पिलाना नसीब हुआ और नबी (सल्ल०) बार-बार उनके घर तशरीफ़ ले गए।

हज़रत अमरा-बिन्ते-मसऊद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत अमरा-बिन्ते-मसऊद (रज़ि०) ख़ज़रज के सरदार साद-बिन-उबादा (रज़ि०) की माँ थीं। नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही अपने बेटे की दावत पर इस्लाम क़बूल किया और फिर सहाबियात में शामिल हुईं। सन् 5 हिजरी में उनका इन्तिक़ाल हुआ। मुसनद अहमद में है कि हज़रत साद-बिन-उबादा (रज़ि०) ने पानी की एक सबील (वह जगह जहाँ मुसाफ़िरों को पानी पिलाया जाता है) अपनी माँ को सवाब पहुँचाने के लिए रखी थी। कुछ रिवायतों में उनके बाप का नाम साद-बिन-अम्र आया है।

हज़रत फ़ुक़ैहा-बिन्ते-उबैद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत फ़ुक़ैहा (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज के ख़ानदान साइदा से था।

नसब का सिलसिला यह है : फ़ुक़ैहा-बिन्ते-उबैद-बिन-दुलैम-बिन-हारिसा-बिन-अबू-ख़ुज़ैमा-बिन-सअ़लबा-बिन-तुरैफ़-बिन-ख़ज़रज-बिन-साइदा

उनकी शादी उनके चचेरे भाई, ख़ज़रज के सरदार हज़रत साद-बिन-उबादा (रज़ि०) से हुई। नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले अपने शौहर के साथ इस्लाम क़बूल किया। हज़रत क़ैस-बिन-साद-बिन-उबादा (रज़ि०) जिन्होंने अपनी मेहमान-नवाज़ी और लोगों के काम आने की वजह से बहुत बड़ा नाम पाया, हज़रत फ़ुक़ैहा (रज़ि०) के बेटे थे।

एक रिवायत में है कि उन्होंने नबी (सल्ल०) की इजाज़त से सन् 8 हिजरी में अपने ग़ुलाम को हुक्म दिया कि वह मस्जिदे-नबवी के लिए एक मिम्बर तैयार करे। उनके ग़ुलाम ने ग़ाबा के झाऊ की लकड़ी से मिम्बर बनाया।

और हालात मालूम नहीं।

हज़रत कब्शा-बिन्ते-राफ़ेअ् (रज़ि०)

हज़रत कब्शा (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी और औस क़बीले के सरदार हज़रत साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) की माँ थीं। उनके बाप का नाम राफ़ेअ्-बिन-उबैद था और उनका ताल्लुक़ ख़ुदरा ख़ानदान से था। सीरत-निगारों ने हज़रत कब्शा-बिन्ते-राफ़ेअ् के इस्लाम क़बूल करने पर इत्तिफ़ाक़ किया है। नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही ईमान ले आई थीं। वे बड़ी मुहतरम ख़ातून थीं। उन्हें शेर और शायरी में भी दिलचस्पी थी। उनकी उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) से दोस्ती थी। अहज़ाब की लड़ाई में बनू-हारिसा की गढ़ी में उनके पास बैठी थीं कि हज़रत साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) 'रजज़' (लड़ाई में जोश बढ़ानेवाले अशआर) पढ़ते हुए उनके सामने से गुज़रे। हज़रत कब्शा (रज़ि०) ने पुकारकर कहा, "बेटे, दौड़कर जा, तूने बड़ी देर कर दी।"

इस लड़ाई में हज़रत साद (रज़ि०) को बड़ा गहरा ज़ख़्म लगा और वे कुछ दिनों के बाद शहीद हो गए।

हज़रत कब्शा (रज़ि०) को अपने नेक बेटे के इन्तिक़ाल का बहुत सदमा पहुँचा। उन्होंने उनकी याद में रो-रोकर बहुत-से मातमी अशआर पढ़े, जिनमें हज़रत साद (रज़ि०) की बहुत तारीफ़ की।

नबी (सल्ल०) ने अशआर सुने तो फ़रमाया, "जितनी रोनेवाली औरतें हैं झूठ बोलती हैं, लेकिन उम्मे-साद सच कहती हैं।"

हज़रत कब्शा (रज़ि०) हज़रत साद के इन्तिक़ाल के बाद बहुत दिनों तक जिन्दा रहीं।

हज़रत ख़ालिदा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

हज़रत ख़ालिदा (रज़ि०) बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) की फूफी थीं। नबी (सल्ल०) हिजरत करके जिस वक़्त मदीना तशरीफ़ लाए, उस वक़्त हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) अपने बाग़ में थे। उनकी फूफी हज़रत ख़ालिदा-बिन्ते-हारिस (रज़ि०) भी वहीं थीं। किसी ने बाग़ में जाकर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) के आने की ख़बर दी तो अक़ीदत और ख़ुशी से बेक़ाबू होकर वे बेइख़्तियार अल्लाहु-अकबर कह उठे। इसकी वजह यह थी कि वे तौरात के बहुत बड़े आलिम थे और उसमें आख़िरी नबी की निशानियाँ पढ़-पढ़कर आप (सल्ल०) से बहुत मुहब्बत और अक़ीदत रखने लगे थे। उनकी ख़ुशी और बेताबी देखकर हज़रत ख़ालिदा (रज़ि०) बहुत हैरान हुईं और बोलीं, "हुसैन, (हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) का असली नाम) इन साहब के आने से तुम्हें इतनी ख़ुशी हो रही है कि शायद मूसा-बिन-इमरान (अलैहि०) भी तशरीफ़ लाते तो तुम इतने ख़ुश न होते!"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) ने कहा, "फूफी जान, ख़ुदा की क़सम, ये भी मूसा (अलैहि०) के भाई हैं और उसी दीन की दावत

देने के लिए दुनिया में आए हैं, जिस दीन की दावत मूसा (अलैहि०) देने आए थे।"

हज़रत ख़ालिदा (रज़ि०) ने पूछा, "भतीजे, क्या सचमुच ये वही नबी हैं जिनकी ख़बर तौरात और दूसरी आसमानी किताबों में दी गई है?"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) ने कहा, "बेशक ये वही नबी हैं।"

हज़रत ख़ालिदा (रज़ि०) बोलीं, "फिर तो हमारी ख़ुशनसीबी है कि वे हमारे शहर में तशरीफ़ लाए।"

इस बातचीत के बाद हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िरी के लिए गए। हज़रत ख़ालिदा (रज़ि०) भी उनके पीछे गईं और इस्लाम क़बूल करके वापस लौटीं। फिर अपने घर पहुँचकर सब लोगों को इस्लाम क़बूल करने की दावत दी, तो घर के सभी छोटे-बड़े ईमान ले आए।

कुछ रिवायतों में उनको अब्दुल्लाह-बिन-सलाम (रज़ि०) की चची बताया गया है।

हज़रत उम्मे-बुजैद (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-बुजैद (रज़ि०) औस क़बीले के ख़ानदान अब्दुल-अशहल से थीं। उनका असली नाम हव्वा था। वे हज़रत यज़ीद-बिन-सकन अंसारी (रज़ि०) की बेटी थीं। मशहूर सहाबिया हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद अंसारिया (रज़ि०) उनकी बहन थीं।

नसब का सिलसिला यह है : हव्वा-बिन्ते-यज़ीद-बिन-सकन-बिन-राफ़ेअ़

उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद इस्लाम क़बूल किया। ये बहुत पक्के अक़ीदेवाली मुसलमान थीं। उन्हें बैअते-रिज़वान में शरीक

होने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हैं।[1]

हज़रत अमरा-बिन्ते-रवाहा (रज़ि०)

हज़रत अमरा (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज क़बीले से था।

नसब का सिलसिला यह है: अमरा-बिन्ते-रवाहा-बिन-सअलबा-बिन-इमरुउल-क़ैस-बिन-अम्र-बिन-इमरुउल-क़ैस अल-अकबर-बिन-मालिक-बिन-काब-बिन-ख़ज़रज-बिन-हारिस-बिन-ख़ज़रज।[1]

वे मशहूर सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि०), जिनका लक़ब शायरे-रसूल था, की बहन थीं।

उनका निकाह बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत बशीर-बिन-साद अंसारी (रज़ि०) से हुआ। उनके बेटे नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) भी मशहूर सहाबी हैं। हज़रत अमरा (रज़ि०) को अपने बेटे नोमान से इतनी ज़्यादा मुहब्बत थी कि वे अपनी सारी जायदाद उनके ही नाम कर देना चाहती थीं। उन्होंने अपने शौहर बशीर (रज़ि०) को इस बात पर सहमत कर लिया और नबी (सल्ल०) को गवाह बनाना चाहा।

हज़रत बशीर-बिन-साद (रज़ि०) नन्हे नोमान (रज़ि०) को अपने साथ लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप गवाह रहिए कि मैं अपनी अमुक ज़मीन (या जायदाद) अपने इस लड़के को देता हूँ।" नबी (सल्ल०) ने पूछा, "इसके दूसरे भाइयों को भी हिस्सा दिया है?"

उन्होंने कहा "नहीं!"

---

1. पिछले पेजों में इनके बारे में हव्वा-बिन्ते-यज़ीद के नाम से ज़िक्र आ चुका है। कुछ सीरत-निगारों की तरह लेखक ने भी इनका ज़िक्र अलग-अलग फ़र्द की हैसियत से किया है, जो कि सही नहीं है। (इदारा)

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तो मैं ज़ुल्म पर गवाही नहीं देता।" इस पर वे ख़ामोशी से घर लौट गए और हज़रत अमरा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) का हुक्म मान लिया, यानी अपनी सारी जायदाद एक ही बेटे को दे देने का इरादा छोड़ दिया।

नबी (सल्ल०) हज़रत अमरा (रज़ि०) पर बहुत शफ़क़त फ़रमाते थे।

एक बार आप (सल्ल०) के पास ताइफ़ से अंगूर आए। इत्तिफ़ाक़ से हज़रत नोमान (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की मजलिस में मौजूद थे। उस वक़्त उनकी उम्र लगभग छः-सात साल थी। नबी (सल्ल०) ने उन्हें अंगूर के दो गुच्छे दिए कि एक तुम्हारा और एक तुम्हारी माँ का। नोमान (रज़ि०) दोनों गुच्छे रास्ते में ही चट कर गए और माँ को बताया तक नहीं। कुछ दिनों के बाद नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आप (सल्ल०) ने पूछा, "नोमान, वह अंगूर अपनी माँ को दे दिए थे?"

उन्होंने कहा, "नहीं।"

नबी (सल्ल०) ने प्यार से उनके कान ऐंठे, फ़रमाया, "क्यों मक्कार!"

हज़रत अमरा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं।

हज़रत उम्मे-रुफ़ैदा या रुफ़ैदा असलमिया (रज़ि०)

इनका नाम कुछ रिवायतों में उम्मे-रुफ़ैदा और कुछ में रुफ़ैदा आया है। दवाइयों और चीर-फाड़ के ज़रिए से इलाज करने में माहिर थीं। अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि उनका ख़ेमा, जिसमें चीर-फाड़ और मरहम-पट्टी का सामान था, मस्जिदे-नबवी के पास था।

एक रिवायत में है कि कुछ मौक़ों पर नबी (सल्ल०) ने उन्हें मस्जिदे-नबवी के अन्दर ख़ेमा लगाने की इजाज़त दी थी।

औस क़बीले के सरदार हज़रत साद-बिन-मुआज़ (रज़ि०) अहज़ाब

की लड़ाई में ज़ख़्मी हुए तो हज़रत उम्मे-रुफ़ैदा (रज़ि०) ही ने उनका इलाज किया था।

इनके इतने ही हालात मालूम हैं।

हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) की बीवी (रज़ि०)

इनका नाम और नसब मालूम नहीं है। इनका ताल्लुक़ अंसार से था और ये नबी (सल्ल०) के एक सहाबी हज़रत जुलैबीब अंसारी (रज़ि०) की बीवी थीं।

इनका निकाह अजीब हालात में जुलैबीब (रज़ि०) से हुआ। हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) की सूरत-शक्ल मामूली थी और क़द भी छोटा था। इसलिए कोई उन्हें अपनी लड़की देने के लिए तैयार नहीं होता था। आख़िर नबी (सल्ल०) ने अंसार के एक ख़ानदान में उनका रिश्ता भेजा। लड़की के माँ-बाप को इस रिश्ते से संकोच हुआ तो उनकी नेक बेटी ने उनके सामने अल्लाह का यह हुक्म पेश किया कि, "जब अल्लाह और रसूल किसी बात का फ़ैसला कर दें तो किसी मुसलमान को उससे संकोच करने की गुंजाइश नहीं।"

फिर कहा, "जो अल्लाह के रसूल की मरज़ी है वही मेरी भी है, और मैं जुलैबिब से शादी करने के लिए तैयार हूँ।"

नबी (सल्ल०) को जब इस बात की ख़बर हुई तो आप बहुत ख़ुश हुए और दुआ की, "ऐ अल्लाह इस लड़की पर बरकतों का दरिया बहा दे और इसकी ज़िन्दगी में कभी परेशानी न आए!"

उसके बाद आप (सल्ल०) ने हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) से फ़रमाया, "मैं फ़ुलाँ लड़की से तुम्हारा निकाह करता हूँ।"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप मुझे खोटा पाएँगे।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं, तुम ख़ुदा की नज़र में खोटे नहीं

हो।” फिर आप (सल्ल०) ने उस नेक लड़की का निकाह हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) से कर दिया।

बयान किया जाता है कि नबी (सल्ल०) की दुआ के असर से उनकी घरेलू ज़िन्दगी बरकतों से भर गई। हज़रत जुलैबीब (रज़ि०) बहुत ख़ुशहाल हो गए और तमाम अंसार में उनकी नेक बीवी से ज़्यादा कोई औरत अमीर और दिल खोलकर ख़र्च करनेवाली न थी।

हज़रत सुलाफ़ा-बिन्ते-बरा अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत सुलाफ़ा (रज़ि०) ख़ज़रज क़बीले के सलिमा ख़ानदान से थीं। वे बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत बरा-बिन-मारूर अंसारी (रज़ि०) की बेटी थीं। उनका निकाह हज़रत अबू-क़तादा अंसारी (रज़ि०) से हुआ था। उनके तीन बेटे अब्दुल्लाह, माबद और अब्दुर्रहमान थे। उन्हें नबी (सल्ल०) से बहुत मुहब्बत थी। उनकी घरेलू ज़िन्दगी बहुत ख़ुशगवार थी।

हज़रत उनैसा-बिन्ते-अबू-हारिसा (रज़ि०)

हज़रत उनैसा (रज़ि०) का ताल्लुक़ ख़ज़रज के ख़ानदान अदी-बिन-नज्जार से था। जाहिलियत के ज़माने में उनका निकाह नोमान औसी से हुआ था। उनके मरने के बाद उनकी शादी मालिक-बिन-सिनान ख़ुदरी से हुई। यह घटना नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले की है।

बैअते-अक़बा के बाद घर-घर में इस्लाम फैला तो मालिक-बिन-सिनान (रज़ि०) और उनैसा (रज़ि०) दोनों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) उनके बेटे थे। हज़रत मालिक-बिन-सिनान उहुद की लड़ाई में बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गए। उन्होंने अपने पीछे कोई धन-सम्पत्ती नहीं छोड़ी थी, इसलिए हज़रत उनैसा (रज़ि०) और उनके बारह साल के बेटे अबू-सईद (रज़ि०) ग़रीबी और परेशानी में पड़ गए। एक दिन हज़रत उनैसा

(रज़ि०) ने अबू-सईद (रज़ि०) से कहा, "बेटे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में जाओ, आज उन्होंने अमुक आदमी को कुछ दिया है, तुम्हें भी कुछ-न-कुछ ज़रूर देंगे।"

उन्होंने पूछा, "घर में कुछ है?" माँ से नहीं का जवाब सुनकर वे सीधे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए। उस वक़्त नबी (सल्ल०) ख़ुत्बा दे रहे थे, "जो शख़्स तंगी में सब्र करेगा अल्लाह उसे संतुष्टि और ख़ुशहाली अता करेगा।"

नबी (सल्ल०) का ख़ुत्बा सुनकर हज़रत अबू-सईद (रज़ि०) ने दिल में सोचा कि मेरे पास एक ऊँटनी मौजूद है इसलिए हाथ फैलाकर नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ देने की क्या ज़रूरत है। यह सोचकर ख़ाली हाथ माँ के पास आ गए। माँ-बेटे को अल्लाह ने सब्र का फल यह दिया कि थोड़े ही दिनों में उनकी ग़रीबी ख़ुशहाली में बदल गई और वे दौलतमन्द हो गए।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अली (रज़ि०)

सन् 11 हिजरी रबीउल-अव्वल के महीने में जब नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल का वक़्त आया तो आप (सल्ल०) ने अपनी प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमा ज़हरा (रज़ि०) से फ़रमाया कि अपने बच्चों को बुलाओ। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) फ़ौरन अपने तमाम बच्चों को नबी (सल्ल०) के पास ले आईं। बच्चों ने अपने मेहरबान नाना को बेचैन देखा तो बेइख़्तियार रोने लगे। उनमें से एक छः साल की बच्ची को इतना दुख हुआ कि उसने नबी (सल्ल०) के मुबारक सीने पर अपना सिर रख दिया और सिसकियाँ भरने लगी। नबी (सल्ल०) ने उस बच्ची के माथे को चूमा और उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरकर तसल्ली दी।

यह वही बच्ची थी, जो छः साल पहले हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के घर पैदा हुई थी तो नबी (सल्ल०) मौजूद नहीं थे। तीन दिन के बाद आप (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो सीधे हज़रत

फ़ातिमा (रज़ि०) के घर तशरीफ़ ले गए। उस बच्ची को गोद में लिया और बहुत देर तक रोते रहे। फिर खजूर चबाई और लुआब बच्ची के मुँह में डाला। उसके बाद नबी (सल्ल०) ने उस बच्ची का नाम 'ज़ैनब' रखा और फ़रमाया कि, "यह ख़दीजा की हमशक्ल है।" छः सालों के बाद आज यही ज़ैनब (रज़ि०) अपने मेहरबान नाना से हमेशा के लिए बिछड़ रही थी। छः साल की नन्ही बच्ची के लिए यह एक बहुत बड़ी मुसीबत थी, लेकिन उसे क्या ख़बर थी कि ज़िन्दगी में उसपर इतनी क़ियामतें टूटनेवाली हैं कि उसकी कुन्नियत ही 'उम्मे-मसाइब' (मुसीबतों की माँ) मशहूर हो जाएगी।

ये ज़ैनब (रज़ि०) जिन्हें ज़ैनबे-कुबरा भी कहा जाता है, इस्लामी तारीख़ की वह शानदार शख़्सियत हैं कि जिनके इल्म और फ़ज़्ल, सूझ-बूझ, अक़्लमन्दी, सच्चाई, निडरता और सलीक़े से अपनी बात कहने की ख़ूबियों से तारीख़ के पन्ने आजतक जगमगा रहे हैं और क़ियामत तक जगमगाते रहेंगे।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने जिस घराने में आँखें खोलीं और होश सम्भाला वह इस दुनिया का बेहतरीन घराना था। उनके नाना नबियों के सरदार, रहमते-आलम मुहम्मद (सल्ल०) थे, नानी सबसे पहले इस्लाम क़बूल करनेवाली ख़ातून, उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) थीं, बाप हज़रत अली (रज़ि०) तो माँ जन्नत में जवान औरतों की सरदार हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) थीं। उनके भाई जन्नत के नौजवानों के सरदार, हज़रत हसन (रज़ि०) और हज़रत हुसैन (रज़ि०) थे। चचा नबी (सल्ल०) के महबूब, मुअता के शहीद हज़रत जाफ़र (रज़ि०) थे।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) सन् 5 हिजरी में जुमादल-ऊला के महीने में पैदा हुईं। नबी (सल्ल०) ने ख़ुद उनका नाम ज़ैनब रखा और अपने मुबारक मुँह का लुआब उनके मुँह में डाला।

उनकी कुन्नियत उम्मे-हसन या उम्मे-कुलसूम थी। कर्बला की घटना के बाद उनकी कुन्नियत 'उम्मे-मसाइब' मशहूर हो गई थी।

उनके कुछ और मशहूर लक़ब ये हैं।

नाइबतुज़-ज़हरा, शरीकतुल-हुसैन, राज़िया-बिल-क़द्र-वल-क़ज़ा, नामूसुल-कुबरा, सिद्दीक़तुस-सुगरा, शुजाआ, फ़सीहा, बलीग़ा, ज़ाहिदा, फ़ाज़िला, आलिमा, आबिदा, महबूबतुल-मुस्तफ़ा, आक़िला, कामिला, मूसिक़ा, वलीयतुल्लाह, काबतुज़ज़राया, उमनीयतुल्लाह, क़ुर्रते-ए़नुल-मुतर्ज़ा, ख़ातूने-कर्बला।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की परवरिश और तरबियत नबी (सल्ल०), हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की निगरानी में शुरू हुई। एक दिन बचपन में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) क़ुरआन पाक की तिलावत कर रही थीं कि अनजाने में सिर से ओढ़नी उतर गई। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने देखा तो उनके सिर पर ओढ़नी डाली और फ़रमाया, "बेटी अल्लाह का कलाम नंगे सिर नहीं पढ़ते।"

एक दिन नन्हे हज़रत हुसैन (रज़ि०) और नन्ही ज़ैनब (रज़ि०) आपस में लड़ पड़े। हज़रत फ़तिमा (रज़ि०) ने उन्हें क़ुरआन की आयात पढ़कर सुनाई और फ़रमाया, "बच्चो, लड़ाई से अल्लाह नाराज़ हो जाता है।" दोनों बच्चे अल्लाह के डर से काँप उठे और वादा किया कि फिर कभी नहीं लड़ेंगे। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) बहुत ख़ुश हुईं और उन्हें गले से लगा लिया।

नबी (सल्ल०) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से बहुत मुहब्बत करते थे। कई बार वे भी हज़रत हसन (रज़ि०) और हज़रत हुसैन (रज़ि०) की तरह नबी (सल्ल०) के मुबारक कंधों पर सवार हुईं। जब नबी (सल्ल०) हज के लिए मक्का तशरीफ़ ले गए तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) भी आप (सल्ल०) के साथ थीं। उस वक़्त उनकी उमर पाँच साल थी और यह उनका पहला सफ़र था।

सन् 11 हिजरी में नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हुआ तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की उम्र लगभग छः साल थी। छः महीने के बाद वे माँ की ममता से भी महरूम (वंचित) हो गईं। इन घटनाओं ने नन्ही ज़ैनब (रज़ि०) को बहुत सदमा पहुँचाया। मेहरबान नाना और ममतामयी माँ के बिछड़ने से वे और उनके बहन-भाई ग़म की तस्वीर बन गए। हज़रत अली (रज़ि०) ने बच्चों की तालीम और तरबियत का काम खुद सम्भाला और कुछ मुद्दत के बाद उनकी देखभाल के लिए उम्मुल-बनीन-बिन्ते-हिज़ाम किलाबिया से निकाह कर लिया।

इल्म का समुद्र जब ख़ुद ही शिक्षक हो तो शिष्यों की ख़ुशक़िस्मती का क्या ठिकाना! हज़रत अली (रज़ि०) की निगरानी में सारे बच्चों ने थोड़े ही दिनों में इल्म और हिक्मत के ख़ज़ाने हासिल कर लिए। हज़रत ज़ैनब भी अपने बुलन्द मर्तबा बाप के इल्म और दूसरी ख़ूबियों को सीखकर ख़ूब निखर गईं। वे इबादत-गुज़ार, सूझ-बूझ रखनेवाली, हमेशा सच बोलनेवाली, सच बोलने में किसी से न डरनेवाली, पाक दामन और रातों में जागकर इबादत करनेवाली ख़ातून थीं। इन तमाम ख़ूबियों में वे हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का नमूना बन गई थीं। वे लम्बी और रूपवान थीं। उनके चेहरे पर अपने नाना का जलाल (प्रताप) था और चाल-ढाल में हज़रत अली (रज़ि०) की झलक थी। सभी सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है कि इल्म और फ़ज़्ल में बनू-हाशिम ही नहीं बल्कि सारे क़ुरैश में कोई लड़की उनकी बराबरी का दावा नहीं कर सकती थी।

हज़रत अली (रज़ि०) बेमिसाल ख़तीब (वक्ता) थे। उनकी तक़रीरें और भाषण की ज़बान सरल और ऊँचे दर्जे की होती थी। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को यह ख़ूबी अपने अज़ीम बाप से विरासत में मिली थी। उनकी बेमिसाल तक़रीरें तारीख़ (इतिहास) के पन्नों में महफ़ूज़ हैं। उन्हें पढ़कर कौन-सा दिल है जो पिघल न जाए और कौन-सी आँख हैं जिससे आँसू न टपक पड़ें।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) जब बड़ी हुईं तो किन्दा क़बीला के रईस अशअस-बिन-क़ैस ने उनके लिए निकाह का पैग़ाम भेजा, लेकिन हज़रत अली (रज़ि०) ने किसी वजह से इनकार कर दिया। उसके बाद हज़रत अली (रज़ि०) के भतीजे, हज़रत जाफ़र (रज़ि०) के बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) अपने चचा की ख़िदमत में हाज़िर हुए और हज़रत ज़ैनब (रजि०) के साथ निकाह करने की ख़ाहिश ज़ाहिर की। हज़रत जाफ़र (रज़ि०) की शहादत के बाद नबी (सल्ल०) ने खुद हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की परवरिश और तरबियत की थी और नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अली (रज़ि०) ही उनके निगराँ और सरपरस्त थे।

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) के अख़लाक़ पाकीज़ा थे। वे रूप-रंग और आदतों में क़ुरैश के दूसरे नौजवानों से बढ़कर थे। हज़रत अली (रज़ि०) ने उनका रिश्ता मंज़ूर कर लिया। उसके बाद ख़ानदान के कुछ बुज़ुर्ग हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) को साथ लेकर मस्जिद आए और हज़रत अली (रज़ि०) ने बड़ी सादगी से अपनी प्यारी बेटी का निकाह हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से पढ़ा दिया। यह निकाह हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हुआ। निकाह के बाद ख़ानदान की औरतें उन्हें अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) के घर खुद पहुँचा आईं। दूसरे दिन वालीमे की दावत हुई। महर की रक़म के बारे में सीरत-निगारों में इख़्तिलाफ़ है। कुछ ने चार सौ अस्सी दिरहम लिखा है और कुछ ने चालीस हज़ार। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) उस वक़्त तिजारत करते थे और काफ़ी खुशहाल थे।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की शादी-शुदा ज़िन्दगी बहुत खुशगवार थी। वे अपने शौहर की ख़िदमत-गुज़ार थीं और अब्दुल्लाह (रज़ि०) भी उनका बहुत ख़याल रखते थे। घर में कनीज़ें (दासियाँ) भी थीं और नौकर-चाकर भी, लेकिन वे घर का काम-काज अपने हाथ से करती थीं।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) फ़रमाया करते थे, "ज़ैनब बेहतरीन घरवाली हैं।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) का हाथ बहुत खुला था। वे दूसरों की मदद करने में हमेशा आगे रहते थे। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की बेटी भी उसी रंग में रंगी हुई थीं। यह तो हो ही नहीं सकता था कि कोई ज़रूरतमन्द या माँगनेवाला उनके दरवाज़े पर आए और ख़ाली हाथ चला जाए या किसी की मुसीबत का उन्हें पता चले और वे उसकी परेशानी दूर करने का उपाय न करें। दोनों मियाँ-बीवी की इस आदत की वजह से बहुत-से ऐसे लोग जो ज़रूरतमन्द न भी होते उनसे फ़ायदा उठा लेते।

एक बार हज़रत हुसैन (रज़ि०) ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) से कहा, "ऐ भाई! तुम बहुत ज़्यादा ख़र्च करते हो और जो लोग ज़रूरतमन्द नहीं होते, उन्हें भी अपनी कमाई में शरीक कर लेते हो।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने जवाब दिया, "भाई! क्या करूँ, माँगने वाले को देखकर दिल क़ाबू में नहीं रहता। अल्लाह ने मुझे दौलत इसी लिए दी है कि उसके बन्दों में बाँटूँ।"

शौहर के घर में दौलत की रेल-पेल से हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के मिज़ाज में कोई बदलाव नहीं आया और वे पहले ही की तरह सब्र, संतोष, सादगी और मेहनत की ज़िन्दगी गुज़ारती रहीं।

सन् 37 हिजरी में, हज़रत अली (रज़ि०) अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में कूफ़ा में रहने लगे तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) भी मदीना से कूफ़ा आ गए। कूफ़ा में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) पढ़ाने और नसीहत के ज़रिए से लोगों को सीधे रास्ते पर लाने के काम में मसरूफ़ हो गईं। कूफ़ा की औरतें हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की ख़िदमत में हाज़िर होतीं और उनकी बातों और

नसीहतों से फ़ायदा उठातीं। वे उनसे क़ुरआन मजीद की आयतों के मतलब और तफ़्सीर भी पूछा करती थीं। एक बार हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) कुछ औरतों के सामने सूरा मरियम के मतलब और तफ़्सीर बयान कर रही थीं कि हज़रत अली (रज़ि०) वहाँ तशरीफ़ लाए और बड़े ध्यान से अपनी प्यारी बेटी की तक़रीर सुनते रहे। जब उनका बयान ख़त्म हुआ तो अमीरुल-मोमिनीन ने बड़ी ख़ुशी से फ़रमाया, "प्यारी बेटी! मैंने तुम्हारा बयान सुना और मुझे बहुत ख़ुशी हुई कि तुम अल्लाह के कलाम के मतलब इतने अच्छे तरीक़े से बयान कर सकती हो।"

जल्द ही हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के इल्म और फ़ज़्ल की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। यह उनकी ज़िन्दगी का सबसे अच्छा ज़माना था, लेकिन अफ़सोस कि सुख और इत्मीनान के ये दिन थोड़े थे।

17 रमज़ान, सन् 40 हिजरी को हज़रत अली (रज़ि०) कूफ़ा की मस्जिद में अल्लाह के सामने सजदे में सिर टेके हुए थे कि एक बदनसीब ख़ारिजी अब्दुर्रहमान-बिन-मुलजिम ने उनपर क़ातिलाना हमला किया और अपनी ज़हर से बुझी तलवार के भरपूर वार से उन्हें बुरी तरह ज़ख़्मी कर दिया। इब्ने-मुलजिम को मुसलमानों ने गिरफ़्तार कर लिया। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने उसे देखा तो ग़म और ग़ुस्से से बेताब हो गईं और बोलीं—

"ऐ ख़ुदा के दुश्मन, तूने अमीरुल-मोमिनीन को ज़ख़्मी कर डाला!"

इब्ने-मुलजिम ने कहा, "अमीरुल-मोमिनीन को नहीं तुम्हारे बाप को।" हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने फ़रमाया, "इन-शाअल्लाह, उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।"

इब्ने-मुलजिम ने बड़ी ढिठाई से जवाब दिया, "तो फिर चीख़-पुकार क्यों करती हो? ख़ुदा की क़सम! मैंने कई दिनों तक अपनी तलवार को ज़हर पिलाया है।"

उसी ज़हरीली तलवार के ज़ख़्म से अमीरुल-मोमिनीन हज़रत अली (रज़ि०) 21 रमज़ान, सन् 40 हिजरी को शहीद हो गए। अपने बुलन्द मर्तबा बाप की शहादत से हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा, लेकिन अभी उनकी क़िस्मत में और बड़े-बड़े सदमे लिखे थे। सन् 49 या 50 हिजरी में उन्हें अपने बड़े भाई हज़रत हसन (रज़ि०) की शहादत का सदमा सहना पड़ा। उस वक़्त वे अपने शौहर और बच्चों के साथ मदीना में थीं।

सन् 60 हिजरी, ज़िल-हिज्जा के महीने में कूफ़ावालों की दावत पर हज़रत हुसैन (रज़ि०) ने अपने बाल-बच्चों और जाँनिसारों की एक छोटी जमाअत के साथ मक्का से कूफ़ा जाने का इरादा किया तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) भी अपने दो छोटे-छोटे बेटों के साथ इस क़ाफ़िले में शामिल हो गईं। हालाँकि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) खुद उस क़ाफ़िले में शरीक नहीं हो सके लेकिन उन्होंने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) और अपने बच्चों को हुसैन (रज़ि०) के साथ जाने की इजाज़त दे दी।

सन् 61 हिजरी, मुहर्रम के महीने की दस तारीख़ को कर्बला की अफ़सोसनाक घटना घटी जिसमें हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की आँखों के सामने उनके बच्चे, भतीजे, भाई और उनके बहुत-से साथी शामी (सीरिया की) फ़ौज से बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए एक-एक करके शहीद हो गए। उस मौक़े पर हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने जिस हिम्मत, सब्र, हौसले, बहादुरी और साबित-क़दमी से काम लिया, तारीख़ में इसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती।

कहा जाता है कि नौ और दस मुहर्रम के बीच की रात को हज़रत हुसैन (रज़ि०) की तलवार साफ़ की जाने लगी तो उन्होंने कुछ अशआर पढ़े जिसे सुनकर वे रोने लगीं और कहने लगीं—

"ऐ काश! आज का दिन देखने को मैं ज़िन्दा न होती, आह मेरे नाना, मेरी माँ, मेरे बाप और मेरा भाई हसन सब मुझको

छोड़कर चले गए! ऐ भाई, अल्लाह के बाद हमारा सहारा अब आप ही हैं, हम आपके बिना कैसे ज़िन्दा रहेंगे।"

हज़रत हुसैन (रज़ि०) ने फ़रमाया, "ज़ैनब, सब्र करो।" हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने कहा, "मेरे भाई, आपके बदले मैं अपनी जान देना चाहती हूँ।"

अपनी प्यारी बहन की बातें सुनकर हज़रत हुसैन (रज़ि०) की आँखों में आँसू आ गए लेकिन उन्होंने मोमिनाना शान से फ़रमाया,

"ऐ बहन, सब्र करो, ख़ुदा से तस्कीन हासिल करो, ख़ुदा की ज़ात के सिवा सब कुछ फ़ना (नष्ट) होनेवाला है। हमारे लिए हमारे नाना मुहम्मद (सल्ल०) की पाक ज़ात नमूना है। तुम उनके ही 'उस्वए-हसना (पवित्र-आचरण) की पैरवी करना। ऐ बहन, तुम्हें ख़ुदा की क़सम है कि अगर मैं ख़ुदा की राह में काम आ जाऊँ तो मेरे मातम में कपड़े न फाड़ना, चेहरे को न नोचना और बैन न करना।"

दस मुहर्रम को जब 'अहले-बैत' के सारे जाँनिसार एक-एक करके क़ुरबान हो गए तो 'अहले-बैत' के जवानों की बारी आई। नबी (सल्ल०) के हमशक्ल, हज़रत अली अकबर-बिन-हुसैन (रह०) बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुए तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ऐ मेरे भतीजे! कहती हुई ख़ेमे से बाहर दौड़ीं और उनकी ख़ून से लथपथ लाश से लिपट गईं। इस भतीजे को उन्होंने बड़ी मुहब्बत से पाला था। हज़रत हुसैन (रज़ि०) ने उन्हें वहाँ से उठाकर ख़ेमे के अन्दर भेजा और जवान बेटे की लाश उठाकर ख़ेमे के सामने ले आए।

अली अकबर (रह०) के बाद अब्दुल्लाह-बिन-मुस्लिम-बिन-अक़ील (रह०), अहमद-बिन-हसन, अबू-बक्र अब्दुल्लाह-बिन-हसन (रह०), जाफ़र-बिन-अक़ील (रह०), उमर-बिन-अली (रह०), उसमान-बिन-अली (रह०) और दूसरे नौजवान बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए एक-एक करके

शहीद हो गए। अब ज़िन्दा बचनेवाले नौजवानों की तादाद सिर्फ़ सात रह गई थी।

अब हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने अपने नौ उम्र बेटों औन और मुहम्मद को लड़ाई के मैदान में भेजने के लिए हज़रत हुसैन (रज़ि०) से इजाज़त माँगी। उन्होंने इजाज़त देने से संकोच किया लेकिन हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) बार-बार दरख़ास्त करने लगीं और इतना इसरार (आग्रह) किया कि न चाहते हुए भी वे उन्हें लड़ाई के मैदान में भेजने पर मजबूर हो गए। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के दोनों सपूत ऐसी बहादुरी और शान से लड़े कि मिसाल क़ायम हो गई। आख़िर शामियों ने उन्हें घेरे में ले लिया और उनपर तलवारों और बरछियों की इस तरह बारिश कर दी कि हाशिमी ख़ानदान के दोनों नौनिहाल शहीद होकर जन्नत में पहुँच गए। दुखियारी ज़ैनब (रज़ि०) और मज़लूम मामू के दिल-जिगर के टुकड़े हो गए लेकिन आसमान की तरफ़ देखा और ख़ामोश हो गए।

औन और मुहम्मद की शहादत के बाद नबी (सल्ल०) के ख़ानदान के बाक़ी नौजवान भी एक-एक करके शहीद हो गए। अब्बास-बिन-अली (रह०) पहले ही शहीद हो चुके थे। अब हज़रत हुसैन (रज़ि०) अकेले रह गए। ज़ैनुल-आबिदीन-बिन-अली (रह०) बीमार थे और लड़ने के क़ाबिल नहीं थे। उसको अल्लाह और ज़ैनब (रज़ि०) के हवाले किया और सबको ख़ुदा हाफ़िज़ कहकर नबी (सल्ल०) के नवासे अपने आख़िरी सफ़र पर चल पड़े। प्यास की शिद्दत थी, अपने जिगर के टुकड़ों और जाँनिसारों की शहादत से दिल छलनी था। लेकिन वे हज़रत अली (रज़ि०) के बेटे थे, ऐसा ज़ोरदार हमला किया कि दुश्मनों की सफ़ें उलट दीं। जिधर बढ़ते दुश्मन का दल बादल की तरह फट जाता। शामी बार-बार हमला करके घेरने की कोशिश करते लेकिन जैसे ही हुसैनी तलवार चमकती, भाग खड़े होते। नबी (सल्ल०) के कंधों के सवार, लड़ते-लड़ते ज़ख़्मों से चूर हो गए लेकिन उनके जलाल को देखकर कोई

अकेला सामने आने की हिम्मत न करता था। झुंड बनाकर हर तरफ़ से तीरों, तलवारों, नेज़ों और बरछियों की बारिश कर रहे थे। हुसैन-बिन-नुमैर ने एक नेज़ा फेंका जो हुसैन-बिन-अली (रज़ि०) के गले में अन्दर तक चुभ गया और मुँह से ख़ून का फ़व्वारा फूट पड़ा। अपने चुल्लू में थोड़ा-सा ख़ून लेकर आसमान की तरफ़ उछाला और फ़रमाया, "ऐ अल्लाह, जो कुछ तेरे हबीब (सल्ल०) के नवासे के साथ किया जा रहा है, तुझी से उसकी फ़रियाद करता हूँ।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने दूर से अपने प्यारे और मेहरबान भाई को ख़ून की कुल्लियाँ करते देखा तो बेताब हो गईं और दौड़ती हुई लड़ाई के मैदान के क़रीब एक टीले पर खड़ी हो गईं और वहीं से शाम (सीरिया) की फ़ौज के सरदार अम्र-बिन-साद को पुकारकर कहा, "ऐ अम्र-बिन-साद, क्या क़ियामत है कि अबू-अब्दुल्लाह क़त्ल किए जा रहे हैं और तुम देख रहे हो!"

अम्र-बिन-साद की आँखों पर 'रे' की हुकूमत के लालच ने पर्दा डाल रखा था, लेकिन फिर भी नबी (सल्ल०) के ममेरे भाई हज़रत साद-बिन-अबू-वक़्क़ास (रज़ि०) का बेटा था, पछतावे से रोने लगा और अपना मुँह हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की तरफ़ से फेर लिया। अब शामियों को लड़ाई से रोकना उसके वश में नहीं था।

हज़रत हुसैन (रज़ि०), हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की आँखों के सामने बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गए। शामियों के पत्थर-दिल उनकी शहादत से ठंडे न हुए। उन्होंने कर्बला के शहीदों के पाकीज़ा जिस्मों को घोड़ों की टापों से रौंदा। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के जिगर के टुकड़े का सिर नेज़े पर चढ़ाया और फिर अहले-बैत के ख़ेमों की तरफ़ आए। एक बदनसीब ने चाहा कि हज़रत ज़ैनुल-आबिदीन (रह०) को भी, (जो बीमार थे) शहीद कर दे, लेकिन हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) उनके सामने खड़ी हो गईं और फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम! जब तक मैं ज़िन्दा हूँ इस

बीमार को कोई क़त्ल नहीं कर सकता।"

उनकी इस हिम्मत को देखकर वह बदबख़्त अपने इरादे से फिर गया।

12 मुहर्रम सन् 61 हिजरी को हुसैनी क़ाफ़िले के बचे-खुचे लोगों को जिनमें कुछ औरतें, बच्चे और बीमार ज़ैनुल-आबिदीन थे, शामी फ़ौज ने क़ैद कर लिया और कूफ़ा की तरफ़ ले चली। शहीदों की लाशें अभी कर्बला के मैदान में बेकफ़न पड़ी थीं। जब मुसीबतों का मारा यह क़ाफ़िला उनके पास से गुज़रा तो क़ाफ़िलेवाले ग़म और सदमे से निढाल हो गए। इस मौक़े पर हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के दुख इन शब्दों में ढल गए—

> ऐ मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्ल०)! आइए, देखिए कि आपके हुसैन (रज़ि०) की ख़ून से लथपत लाश चटियल मैदान में पड़ी है। इनका जिस्म टुक्ड़े-टुक्ड़े कर दिया गया है, आपके घराने की लड़कियाँ रस्सियों में जकड़ी हुई हैं, आपकी नस्ल क़त्ल करके गर्म रेत पर बिछा दी गई है और उसपर धूल उड़ रही है।
>
> ऐ मेरे नाना! यह आपकी औलाद है जिसे हँकाया जा रहा है, ज़रा हुसैन (रज़ि०) को देखिए उनका सिर काट लिया गया है, उनका इमामा और चादर छीन ली गई।"

ज़ैनबे-कुबरा (रज़ि०) का रोना सुनकर दोस्त-दुश्मन सभी रोते थे।

जब हक़ के क़ैदियों का यह लुटा-पिटा क़ाफ़िला कूफ़ा में दाख़िल हुआ तो कूफ़ावाले हज़ारों की संख्या में उन्हें देखने के लिए जमा हो गए। उनमें से कुछ की आँखों में आँसू थे। बेवफ़ा कूफ़ियों की भीड़ देखकर शेरे-ख़ुदा की बेटी सहन न कर सकी और उन लोगों से मुख़ातिब होकर फ़रमाया, "लोगो, अपनी नज़रें नीची रखो, यह मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्ल०) की लुटी औलाद है।"

इसके बाद उन्होंने कूफ़ावालों के सामने इबरत से भरी हुई तक़रीर की। ऐसा लगता था कि हज़रत अली (रज़ि०) ख़ुद तक़रीर कर रहे हैं। अल्लाह की तारीफ़ बयान करने के बाद फ़रमाया, "ऐ कूफ़ियो, ऐ मक्कारो, ऐ वादा तोड़नेवालो, अपनी बात से फिर जानेवालो, ख़ुदा करे तुम्हारी आँखें हमेशा रोती रहें, तुम्हारी मिसाल उन औरतों की सी है जो ख़ुद ही सूत कातती हैं और फिर उसे टुकड़े-टुकड़े कर देती हैं। तुमने ख़ुद ही मेरे भाई से बैअत की और फिर ख़ुद ही तोड़ डाला। तुम्हारे दिलों में खोट और कीना (द्वेष) है, तुम्हारी फ़ितरत (स्वभाव) में झूठ और दग़ा है। ख़ुशामद, डींग और वादे तोड़ना तुम्हारे ख़मीर (प्रकृति) में है। तुमने जो कुछ आगे भेजा है, बहुत बुरा है। तुमने नबी (सल्ल०) के नवासे जो जन्नत के जवानों के सरदार हैं, को क़त्ल किया है, ख़ुदा का क़हर तुम्हारा इन्तिज़ार कर रहा है। आह! ऐ कुफ़ावालो, तुमने एक ऐसा बड़ा गुनाह कर डाला है जो मुँह बिगाड़ देनेवाला और मुसीबत में डाल देनेवाला है। याद रखो, तुम्हारा रब नाफ़रमानों की घात में है। उसके यहाँ देर है अंधेर नहीं।"

इस तक़रीर को सुनकर कूफ़ियों को इतना पछतावा हुआ कि उनमें से ज़्यादातर लोगों की रोते-रोते घिग्गी बंध गई। हज़लम-बिन-कसीर जिसकी गिनती ज़बान और बयान के ऐतिबार से अरब के लोगों में सबसे ऊँचे दर्जे में होती थी, हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की तक़रीर सुन रहा था। तक़रीर सुनकर वह ज़ैनब (रज़ि०) की शानदार ज़बान और बयान से दंग रह गया और बेइख़्तियार कहने लगा—

> "ख़ुदा की क़सम, ऐ अली की बेटी, तुम्हारे बुड्ढे सब बुड्ढों से, तुम्हारे जवान सब जवानों से, तुम्हारी औरतें सब औरतों से और तुम्हारी नस्ल सब नस्लों से बेहतर है, जो सच्ची बात कहने में किसी से नहीं डरती।"

दूसरे दिन कूफ़ा के गर्वनर अब्दुल्लाह-बिन-ज़ियाद ने अपना दरबार

लगाया और अहले-बैत क़ैदियों को उसके सामने पेश किया गया। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) बहुत दुखी और निढाल थीं। इब्ने-ज़ियाद ने पूछा, "ये औरत कौन हैं?" एक कनीज़ ने कहा, "ज़ैनब-बिन्ते-अली हैं।" इब्ने-ज़ियाद ने कहा, "ख़ुदा का शुक्र है जिसने तुम्हें बेइज़्ज़त किया और तुम्हारी कोशिशों को नाकाम कर दिया।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने बड़ी निडरता से जवाब दिया, "ख़ुदा का शुक्र है जिसने अपने रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के ज़रिए से हमें इज़्ज़त बख़्शी। इन-शाअल्लाह गुनाहगार बेइज़्ज़त होंगे और झुठलाए जाएँगे।"

इब्ने-ज़ियाद ने कहा, "तुमने देखा तुम्हारे भाई और उसके साथियों का क्या अंजाम हुआ?"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने फ़रमाया, "अल्लाह ने उन्हें शहादत का बुलन्द दर्जा दिया, जल्द ही वह और तुम क़ियामत के दिन इनसाफ़ करनेवाले के सामने इकट्ठा होगे, उस वक़्त तुम्हें पता चल जाएगा कि किसका क्या अंजाम होता है।"

इब्ने-ज़ियाद झल्लाकर बोला, "बनू-हाशिम के सबसे सरकश आदमी के क़त्ल से मेरा दिल ठंडा हो गया है।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को इब्ने-ज़ियाद के इस तरह ख़ुशी ज़ाहिर करने पर बड़ा दुख हुआ। उनका दिल कर्बला की मुसीबतों से टूट चुका था, बेइख़्तियार रो दीं और फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम! तूने हमें अपने घरों से निकाला, हमारे अधेड़ों को क़त्ल किया, हमारी डालियों को काटा, हमारी जड़ों को उखाड़ा, अगर उसी से तुम्हारा दिल ठंडा होना था तो हो गया।"

इब्ने-ज़ियाद को कोई जवाब न बन पड़ा। उसकी नज़र हज़रत ज़ैनुल-आबिदीन (रह०) पर पड़ी। पूछा, "लड़के तुम कौन हो?"

उन्होंने जवाब दिया, "अली-बिन-हुसैन।"

इब्ने-ज़ियाद ने अम्र-बिन-साद से पूछा, "इसे क्यों नहीं क़त्ल किया?"

उसने जवाब दिया, "बीमार है।"

इब्ने-ज़ियाद ने कहा, "इसे मेरे सामने क़त्ल करो।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) यह सुनकर तड़प उठीं और बोलीं, "ऐ इब्ने-ज़ियाद क्या अभी तक हमारे ख़ून से तेरा दिल नहीं भरा? क्या इस कमज़ोर और बीमार, मुसीबत के मारे हुए बच्चे को भी मारोगे। अगर इसे क़त्ल करना है तो इसके साथ मुझे भी मार डाल।"

यह कहकर हज़रत ज़ैनुल-आबिदीन (रह०) से लिपट गईं। इब्ने-ज़ियाद के दिल में कुछ ख़याल आया और उसने हुक्म दिया इस लड़के को औरतों के साथ रहने के लिए छोड़ दो। कुछ दिनों के बाद इब्ने-ज़ियाद ने शहीदों के सिर और अहले-बैत क़ैदियों को फ़ौज के पहरे में यज़ीद के पास दमिश्क़ भेज दिया।

लम्बे सफ़र की मुसीबतें सहते हुए अहले-बैत क़ैदी दमिश्क़ पहुँचे। तीन-चार दिनों के बाद उन्हें यज़ीद के दरबार में पेश किया गया। एक सुर्ख़ रंग के शामी ने फ़ातिमा-बिन्ते-हुसैन (रज़ि०) की तरफ़ इशारा करके कहा—

"अमीरुल-मोमिनीन, यह लड़की मुझे दे दीजिए।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) तड़प उठीं और बोलीं, "ख़ुदा की क़सम! यह लड़की न तुझे मिल सकती है और न यज़ीद को, जब तक कि अल्लाह के दीन को छोड़ने का एलान न कर दो। पैग़म्बर (सल्ल०) के ख़ानदान में किसी को तू या तेरा बादशाह हरगिज़ लौंडी नहीं बना सकता।"

शामी ने दोबारा यही सवाल किया लेकिन यज़ीद ने उसे रोक दिया।

जब हज़रत हुसैन (रज़ि०) का मुबारक सिर यज़ीद के सामने पेश किया गया तो अहले-बैत की औरतें रोने लगीं। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने उस पाकीज़ा सिर को मुख़ातब करके कहा—

"ऐ हुसैन, ऐ मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्ल०) के प्यारे, ऐ पैग़म्बर के कंधों के सवार, ऐ फ़ातिमा ज़हरा के जिगर के टुकड़े, ऐ जन्नत के जवानों के सरदार!"

यज़ीद ने पूछा, "ये औरत कौन है?"

उसे बताया गया कि हुसैन की छोटी बहन ज़ैनब है। यज़ीद ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से कहा, "क्या तुम्हारा भाई यह नहीं कहता था कि मैं यज़ीद से बेहतर हूँ और मेरा बाप यज़ीद के बाप से बेहतर था।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने निडरता से जवाब दिया, "बेशक मेरा भाई सच कहता था।"

यज़ीद ने कहा, "मेरी उम्र की क़सम, हुसैन के नाना मेरे दादा से बेहतर थे, हुसैन की माँ मेरी माँ से बेहतर थीं। रहा मेरा बाप और हुसैन का बाप, तो सबको मालूम है कि ख़ुदा ने किसके हक़ में फ़ैसला दे दिया।"

यह सुनकर हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने यज़ीद और उसके दरबारियों के सामने एक दर्दनाक तक़रीर की। उन्होंने अल्लाह की हम्द और सना के बाद फ़रमाया—

"ऐ यज़ीद, वक़्त की गरदिश और मुसीबतों की ज़्यादती ने मुझे तुझसे मुख़ातिब होने पर मजबूर कर दिया है। याद रख, अल्लाह हमको ज़्यादा दिन तक इस हाल में नहीं रखेगा। हमारे मक़ासिद (उद्देश्यों) को बरबाद न करेगा। तूने हमें नुक़सान नहीं पहुँचाया, अपने आपको पहुँचाया है। आह! तेरे आदमियों ने नबी (सल्ल०) के कंधों के सवार और उसके भाइयों, बेटों और साथियों को बड़ी बेदर्दी से ज़िब्ह कर

दिया। उन्होंने परदानशीं अहले-बैत की औरतों को बेइज़्ज़त किया। ऐ काश तू इस वक़्त कर्बला के शहीदों को देख सकता तो अपनी सारी दौलत और शान के बदले उनके पहलू में खड़ा होना पसन्द करता! हम जल्द ही अपने नाना की ख़िदमत में हाज़िर होकर उन मुसीबतों को बयान करेंगे जो तेरे बेदर्द हाथों से हमें पहुँची हैं और यह उस जगह होगा जहाँ रसूल (सल्ल०) की औलाद और उनके साथी इकट्ठे होंगे। उनके चेहरों का ख़ून और जिस्मों की ख़ाक साफ़ की जाएगी। वहाँ ज़ालिमों से बदला लिया जाएगा। हुसैन (रज़ि०) और उनके साथी मरे नहीं, वे अपने 'ख़ालिक़' (पैदा करनेवाले) के पास ज़िन्दा हैं और वही उनके लिए काफ़ी है। वह सबसे बड़ा मुनसिफ़ नबी (सल्ल०) की औलाद और उनके साथियों को क़त्ल करनेवालों से ज़रूर बदला लेगा। उसी से हमारी उम्मीदें हैं और उसी से हम फ़रियाद करते हैं।"

हज़रत अली (रज़ि०) की बेटी का गरजना सुनकर यज़ीद और उसके दरबारी सकते में आ गए। यज़ीद डर गया कि कहीं लोग नबी (सल्ल०) के ख़ानदान के तरफ़दार बनकर मेरे ख़िलाफ़ न उठ खड़े हों। उसने अहले-बैत की औरतों को अपने ख़ास हरम-सरा (मकान में औरतों के रहने का हिस्सा) में ठहराया और जहाँ तक हो सका उनका ख़याल रखने की कोशिश की। कुछ दिनों के बाद उसने हज़रत नोमान-बिन-बशीर अंसारी (रज़ि०) की निगरानी में अहले-बैत के क़ाफ़िले को मदीना भेज दिया।

जब क़ाफ़िला चलने लगा तो हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने फ़रमाया, "महमिलों (ऊँट का कजावा जिसमें औरतें बैठती हैं) पर काली चादरें डाल दो ताकि देखनेवालों को पता चले कि यह हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की मुसीबत की मारी औलाद है।"

हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) ने जहाँ तक हो सका इन मुसीबत के मारे मुसाफ़िरों की मदद की और उनका ख़याल रखा और

रास्ते में उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं होने दी। जब यह क़ाफ़िला कर्बला पहुँचा तो वहाँ बुज़ुर्ग सहाबी हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अंसारी (रज़ि०) और बनू-हाशिम के कुछ लोग मदीना से आए हुए थे। उन्हें देखकर हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने आवेग में पुकारा—

"ऐ बनू-हाशिम! तुम्हारा चाँद डूब गया। ऐ मेरे नाना के सहाबी! आपने जिस बच्चे को कभी अपने आक़ा (सल्ल०) के मुबारक कंधों पर सवार किया था, उसका पाकीज़ा जिस्म घोड़े के सुमों से रौंद डाला गया।"

उसके बाद इतना रोईं कि बेहोश हो गईं और वहाँ मौजूद सभी लोग रोने लगे। जब क़ाफ़िला मदीना पहुँचा तो दिन ढल चुका था। हज़रत अली की ग़ैरतदार बेटियों हजरत ज़ैनब और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि०) को उनके अच्छे सुलूक के बदले अपनी चूड़ियाँ पेश कीं और साथ ही मजबूरी जताई कि इस वक़्त हमारे पास और कुछ नहीं कि आपकी ख़िदमत का बदला चुकाएँ।

हज़रत नोमान (रज़ि०) की आँखों से आँसू बहने लगे। बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल की बेटियो, खुदा की क़सम मैंने जो कुछ किया है सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल के लिए किया है। ये चूड़ियाँ लेकर मैं अपना अज्र बरबाद नहीं करूँगा, खुदा के लिए इसे अपने पास ही रखिए।"

उस दिन सारा मदीना सोग में डूबा था। हज़ारों लोगों ने रोते हुए इन मुसीबत के मारे मुसाफ़िरों का इस्तिक़बाल (स्वागत) किया। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की क़ब्र पर गईं तो उनकी चीख़ें निकल गईं और वे बेइख़्तियार होकर कहने लगीं—

"ऐ मेरे प्यारे नाना जान, मैं आपके बेटे और अपने भाई हुसैन की शहादत की ख़बर लाई हूँ। आपकी औलाद को रस्सियों से बाँधकर कूफ़ा और दमिश्क़ की गलियों में फिराया गया।"

उस वक़्त नबी (सल्ल०) की कब्र के पास जितने लोग मौजूद थे, हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की बातें सुनकर रोने लगे। फिर वे अपनी माँ हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की क़ब्र पर गईं और इस दर्द से रोईं कि पत्थरों का कलेजा भी पानी होता था। उसके बाद वे अपने ख़ानदान के दूसरे लोगों से मिलीं, उन्हें अपनी दुख-भरी कहानी सुनाई और सबको सब्र की नसीहत की।

मुसीबतों के अम्बार ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के दिल को टुकड़े-टुकड़े कर डाला था। कर्बला से वापस आने के बाद कभी किसी ने उनके चेहरे पर मुस्कुराहट नहीं देखी।

एक रिवायत के मुताबिक़ सन् 62 हिजरी में मदीना ही में उनका इन्तिक़ाल हो गया। इस तरह अहले-बैत के यतीमों की सरपरस्त, कर्बला के शहीदों की यादगार, दुश्मनों को अल्लाह के अज़ाब से डरानेवाली, बेमिसाल ख़तीबा (वक्ता) अपने महबूब और मज़लूम भाई से जन्नत में जा मिलीं।

एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़ हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) अपने शौहर अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि०) के साथ सीरिया चली गईं। दमिश्क़ के पास ही हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की कुछ ज़मीनदारी थी। वहाँ पहुँचने के बाद बीमार हुईं और वहीं इन्तिक़ाल हुआ।

एक और रिवायत के मुताबिक़ हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) मदीना पहुँचकर कर्बला के शहीदों की मुसीबतें बड़े दर्द भरे अन्दाज़ में लोगों को सुनाया करती थीं। उसका लोगों पर बहुत असर होता था। उनके दिलों में नबी (सल्ल०) की औलाद की मदद का एहसास उभरता था। मदीना के हाकिम ने उन हालात की ख़बर यज़ीद को भेजी। उसने हुक्म दिया कि ज़ैनब (रज़ि०) को किसी दूसरे शहर में भेज दो। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) पहले तो जाने के लिए तैयार नहीं हुईं। फिर लोगों के समझाने-बुझाने से राज़ी हो गईं। फिर वे हज़रत हुसैन (रज़ि०) की

बेटियों, सकीना, फ़ातिमा और कुछ दूसरी औरतों के साथ मिस्र चली गईं। वहाँ के हाकिम हज़रत मस्लमा-बिन-मुख़ल्लिद अंसारी (रज़ि०) बहुत इज़्ज़त और एहतिराम से पेश आए और अपने घर में ठहराया। लगभग एक साल के बाद सन् 63 हिजरी में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का वहीं इन्तिक़ाल हो गया।

हज़रत सख़्बरा-बिन्ते-तमीम (रज़ि०)

हज़रत सख़्बरा-बिन्ते-तमीम (रज़ि०) क़ुरैश के किसी क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं। नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। मदीना की तरफ़ हिजरत की इजाज़त मिली तो वे भी दूसरे मुहाजिरों के साथ मक्का से हिजरत करके मदीना चली गईं और बाक़ी ज़िन्दगी वहीं गुज़ारी।

हज़रत अरनब अंसारिया (रज़ि०)

कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) शादी-ब्याह और ख़ुशी के मौक़ों पर अंसार की लड़कियों को गाने की इजाज़त दे देते थे। एक अंसारी सहाबिया हज़रत अरनब (रज़ि०) को बहुत-से गीत याद थे। नबी (सल्ल०) ने उनको अंसार की कुछ शादियों में गाने की इजाज़त दी थी।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने हज़रत अरनब (रज़ि०) के बारे में चर्चा की है।

हज़रत फर्तना (रज़ि०)

इस्लाम के कट्टर दुश्मन और मक्का के शायर अब्दुल्लाह-बिन-ख़तल की कनीज़ थीं, उसने उन्हें नबी (सल्ल०) और सहाबियों (रज़ि०) की 'हिज्व' (निंदा करने) के अशआर याद करा रखे थे और वे उन्हें सुर-ताल

से गाया करती थीं। मक्का की जीत के मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने उन्हें क़त्ल करने का हुक्म दे दिया था। लेकिन वे कहीं छुप गईं।

एक दिन अचानक नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और अपनी पिछली ज़िन्दगी पर पछतावा ज़ाहिर किया और साथ ही ईमान भी ले आईं। नबी (सल्ल०) ने उनको माफ़ कर दिया। उसके बाद उन्होंने एक मोमिना औरत की तरह ज़िन्दगी गुज़ारी। हज़रत उसमान (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने तक वे ज़िन्दा रहीं।

और हालात मालूम नहीं हो सके।

हज़रत सारा (रज़ि०)

कुछ सीरत-निगारों ने इनका नाम साइरा भी लिखा है। अबू-अम्र-बिन-सैफ़ी-बिन-हाशिम (नबी (सल्ल०) के पूर्वज) की लौंडी थीं। गाना, बजाना और मातम करना उनका पेशा था। शायर इब्ने-ख़तल, जो बनू-तमीम-बिन-ग़ालिब से था, नबी (सल्ल०) और सहाबियों (रज़ि०) की 'हिज्व' (निंदा करने) के अशआर बनाकर उन्हें याद करा देता था और वे उसे गाकर मुशरिकों से शाबाशी और इनाम लिया करती थीं। मक्का की जीत से कुछ पहले मक्का से मदीना आईं और नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं। उनके और नबी (सल्ल०) के बीच यह बातचीत हुई।

नबी (सल्ल०) : क्या तू इस्लाम क़बूल करने आई है?

सारा : नहीं!

नबी (सल्ल०) : फिर क्यों?

सारा : आप मेरे मालिक और आक़ा की औलाद हैं।

नबी (सल्ल०) : साफ़-साफ़ कह।

सारा : मैं ग़रीबी के शिकंजे में जकड़ी हुई हूँ।

नबी (सल्ल०) : क्या तेरा गाना तेरी ज़रूरत पूरी नहीं करता?

सारा : जब से मेरे कुछ मेहरबान सरदार बद्र की लड़ाई में मारे गए, क़ुरैश ने गाने-बजाने में दिलचस्पी लेनी छोड़ दी।

नबी (सल्ल०) : अब तू क्या चाहती है?

सारा : भलाई का सुलूक, रुपये और समान से मदद।

नबी (सल्ल०) को उनपर तरस आ गया और आप (सल्ल०) ने सहाबियों को उनकी मदद के लिए उभारा। सहाबियों (रज़ि०) ने कपड़े और पैसों का इन्तिज़ाम किया और सफ़र के लिए खाने और सवारी का भी बन्दोबस्त कर दिया। जब सारा मक्का को रवाना होने लगीं तो हज़रत हातिब-बिन-अबू-बलतआ (रज़ि०) ने उनको दस दीनार दिए और साथ ही क़ुरैश के सरदारों के नाम एक ख़त भी दिया। उस ख़त में यह ख़बर थी कि मुसलमान जल्द ही मक्का पर चढ़ाई करनेवाले हैं, तुम मेरे बाल-बच्चों की हिफ़ाज़त करना। नबी (सल्ल०) को वह्य के ज़रिए से उस ख़त की जानकारी मिल गई। चूँकि आप (सल्ल०) क़ुरैश को अपने इरादे से बेख़बर रखना चाहते थे, इसलिए आप (सल्ल०) ने हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ि०), हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) और हज़रत मिक़दाद-बिन-असवद (रज़ि०) को हुक्म दिया कि वे सारा का पीछा करें, वह रौज़-ए-ख़ाख़ नामी मक़ाम पर उनको मिल जाएगी, उससे ख़त छीनकर वापस आ जाएँ। उन्होंने नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ सारा को रौज़-ए-ख़ाख़ नामी मक़ाम पर जा पकड़ा और ख़त माँगा। उन्होंने पहले तो इनकार किया लेकिन जब नंगी तलवार सिर पर चमकती देखी तो अपने बालों के जूड़े से निकालकर हज़रत अली (रज़ि०) को दे दिया।

नबी (सल्ल०) ने जब मक्का पर फ़तह हासिल की तो सारा उन कुछ लोगों में से थीं जिनके क़त्ल का हुक्म नबी (रज़ि०) ने दिया था।

वे कहीं छुप गईं। कुछ दिनों के बाद किसी की सिफ़ारिश पर नबी (सल्ल०) ने उनकी मौत की सज़ा रद्द कर दी। सारा पर इस मेहरबानी का बहुत असर हुआ और उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया।

अल्लामा इब्ने-असीर ने लिखा है कि सारा मक्का की फ़तह के मौक़े पर हज़रत अली (रज़ि०) के हाथ से क़त्ल हुई लेकिन दूसरे सीरत-निगारों का बयान है कि वे अमान पाकर मुसलमान हुईं और यही सहीह है। बीबी सारा हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में किसी सवार के घोड़े की लपेट में आ गईं और उसी हादसे से उनका इन्तिक़ाल हुआ।

हज़रत सफ़ाना-बिन्ते-हातिम (रज़ि०)

हज़रत सफ़ाना (रज़ि०) अरब के मशहूर सख़ी (दानी) हातिम ताई की बेटी थीं।

नसब का सिलसिला यह है : सफ़ाना-बिन्ते-हातिम-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-साद-बिन-हशरज-बिन-इमरुउल-क़ैस-बिन-अदी-बिन-अख़ज़म-बिन-अबू-अख़ज़म रबीआ-बिन-जरवल-बिन-साल-बिन-अम्र-बिन-ग़ौस-बिन-तैयी।

'तैयी' क़बीला यमन में आबाद था और हातिम ताई उस क़बीले का सरदार था। उसने अपने पूरे क़बीले के साथ ईसाई मज़हब इख़्तियार कर लिया था। नबी (सल्ल०) की नुबूवत से कुछ पहले हातिम ताई का इन्तिक़ाल हो गया तो उसके बेटे अदी क़बीले के सरदार बने।

सन् 9 हिजरी में नबी (सल्ल०) ने एक छोटी-सी फ़ौज हज़रत अली (रज़ि०) के नेतृत्व में क़बीला 'तैयी' की तरफ़ भेजी। अदी ने उस फ़ौज के आने की ख़बर सुनी तो अपने बाल-बच्चों को लेकर सीरिया चले गए और वहाँ एक बस्ती जौशीया में रहने लगे। घर से चलते वक़्त जो भगदड़ मची उसमें अदी की बहन सफ़ाना उनसे बिछड़ गईं और इस्लामी फ़ौज ने उन्हें क़ैद कर लिया। जब फ़ौज मदीना वापस पहुँची तो क़ैदियों

को नबी (सल्ल०) के सामने पेश किया गया। उस वक़्त सफ़ाना ने आगे बढ़कर नबी (सल्ल०) से कहा—

"ऐ क़ुरैश के सरदार, मैं बेसहारा हूँ, मुझपर रहम कीजिए। बाप का साया मेरे सिर से उठ चुका है और भाई मुझे अकेला छोड़कर भाग गया है। मेरे बाप बनू-तैयी के सरदार थे, वे भूखों को खाना खिलाते थे, यतीमों की सरपरस्ती करते थे, ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतों को पूरा करते थे, मज़लूमों की मदद करते थे और ज़ालिमों को सज़ा देते थे। मैं उस हातिम ताई की बेटी हूँ जिसने कभी किसी माँगनेवाले को ख़ाली हाथ नहीं जाने दिया। अगर आप मुनासिब समझें तो मुझे आज़ाद कर दें।"

नबी (सल्ल०) ने सफ़ाना की बातें सुनकर फ़रमाया, "ऐ ख़ातून! तूने अपने बाप की जो ख़ूबियाँ बयान की है, वे ख़ूबियाँ मुसलमानों की हैं। अगर तेरे वालिद ज़िन्दा होते तो हम उनसे अच्छा सुलूक करते।"

उसके बाद आप (सल्ल०) ने सहाबियों (रज़ि०) को हुक्म दिया, "इस औरत को छोड़ दो, यह एक शरीफ़ और नेक बाप की बेटी है। कोई इज़्ज़तदार शख़्स अगर बेइज़्ज़त हो जाए और कोई मालदार मुहताज हो जाए तो उसके हाल पर तरस खाया करो।"

सहाबियों (रज़ि०) ने सफ़ाना को फ़ौरन छोड़ दिया लेकिन वे अपनी जगह खड़ी रहीं।

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "क्यों अब क्या बात है?" सफ़ाना ने कहा—

"ऐ मुहम्मद! मैं जिस बाप की बेटी हूँ उसने कभी यह नहीं पसन्द किया कि क़ौम मुसीबत झेल रही हो और वह सुख की नींद सोए। आपने मुझपर मेहरबानी की है, अब मेरे साथियों पर भी रहम कीजिए, अल्लाह आपको अच्छा बदला देगा।"

नबी (सल्ल०) सफ़ाना की दरख़ास्त से प्रभावित हुए और हुक्म दिया कि 'तैयी' क़बीले के सभी क़ैदियों को आज़ाद कर दिया जाए। यह सुनकर सफ़ाना बेइख़्तियार कह उठीं—

"अल्लाह आपकी नेकी उस शख़्स तक पहुँचाए जो उसका हक़दार हो। अल्लाह आपको कभी किसी नीच और बुरे अख़लाक़वाले के हवाले न करे और अगर किसी भी क़ौम से कोई नेमत छिन जाए तो उसे आपके ज़रिए से वापस दिला दे।"

एक दूसरी रिवायत में है कि सफ़ाना ने जब पहली बार नबी (सल्ल०) से अपनी आज़ादी के लिए दरख़ास्त की तो दूसरी बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि "मुझको छुड़ानेवाला मौजूद नहीं है, इसलिए आप (सल्ल०) खुद मुझपर एहसान कीजिए, अल्लाह आपपर एहसान करेगा।"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "छुड़ाने वाला कौन?"

उन्होंने जवाब दिया, "अदी-बिन-हातिम, मैं उसकी बहन हूँ।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वही अदी-बिन-हातिम, जो अल्लाह और रसूल से भाग खड़ा हुआ?"

सफ़ाना ने 'हाँ' में जवाब दिया तो नबी (सल्ल०) कोई फ़ैसला किए बग़ैर वापस तशरीफ़ ले गए। दूसरे दिन भी सफ़ाना और नबी (सल्ल०) के बीच ऐसी ही बातचीत हुई लेकिन आप (सल्ल०) ने कोई फ़ैसला नहीं किया। तीसरे दिन भी सफ़ाना ने यही दरख़ास्त की। इस बार हज़रत अली (रज़ि०) ने भी उनकी सिफ़ारिश की। नबी (सल्ल०) ने अब यह दरख़ास्त क़बूल कर ली और सफ़ाना को आज़ाद करने का हुक्म दिया। नबी (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया "अभी वतन जाने में जल्दी न करो, जब यमन जानेवाला कोई भरोसेमन्द आदमी मिल जाए तो मुझे ख़बर करो।"

कुछ दिनों के बाद यमन के बली या क़ुज़ाआ क़बीले का एक क़ाफ़िला मदीना आया। सफ़ाना ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि इस क़ाफ़िले के साथ मुझे वापस भेज दीजिए। नबी (सल्ल०) ने सफ़ाना के मर्तबे के मुताबिक़ सवारी, कपड़े और रास्ते की ज़रूरतों का इन्तिज़ाम करके क़ाफ़िले के साथ भेज दिया।

सफ़ाना को मालूम था कि अदी-बिन-हातिम वतन से भागकर जौशीया में ठहरे हैं, इसलिए नबी (सल्ल०) से विदा होकर सीधे जौशीया पहुँचीं। बहन और भाई की मुलाक़ात कैसे हुई, उसे हज़रत अदी-बिन-हातिम (रज़ि०) की ज़बानी सुनिए –

> "एक दिन जौशीया में हमारे घर के सामने एक ऊँटनी आकर रुकी। महमिल (ऊँट का कजावा जिसमें औरतें बैठती हैं) में एक औरत नक़ाब पहने बैठी थी। मुझे शक हुआ कि मेरी बहन है, लेकिन फिर ख़याल आया कि उसे तो मुसलमान क़ैद करके ले गए हैं, वह इस शानदार अन्दाज़ में कैसे आ सकती है? तभी महमिल का परदा उठा और यह आवाज़ मेरे कान में गूँजी, ज़ालिम, बेरहम, फिटकार है तुझपर, अपने बाल-बच्चों को ले आए और मुझे बेसहारा छोड़ दिया।"

बहन की बातें सुनकर मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ। अपनी ग़लती मान ली और माफ़ी माँगी। बहन चुप हो गई। फिर सवारी से उतरकर जब कुछ देर आराम कर चुकी तो मैंने पूछा, "तुम होशियार और अक़्लमन्द हो। क़ुरैश के सरदार से मिलकर तुमने क्या राय क़ायम की है?"

बहन ने जवाब दिया, "जितनी जल्दी हो सके तुम उनसे मिलो। अगर वे नबी हैं तो उनसे मिलने में जल्दी करना ख़ुशनसीबी है, और अगर बादशाह हैं तो भी यमन का कोई हाकिम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता और एक बादशाह से मिलने में जल्दी करना भी तुम्हारी इज़्ज़त का ज़रिआ होगा।"

सफ़ाना के मशवरे के मुताबिक़ हज़रत अदी (रज़ि०) मदीना पहुँचकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और इस्लाम क़बूल कर लिया। उनके बाद सफ़ाना (रज़ि०) ने भी इस्लाम क़बूल कर लिया।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) ने उनके बारे में लिखा है कि "वे इस्लाम लाईं और उसे सलीक़े से निभाया।"

उनके इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उमामा-बिन्ते-अबुल-आस (रज़ि०)

हज़रत उमामा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की नवासी थीं। माँ हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की बेटी थीं और बाप अबुल-आस-बिन-रबीअ (रज़ि०) थे, जो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के सगे भांजे थे।

नबी (सल्ल०) हज़रत उमामा (रज़ि०) से बहुत मुहब्बत करते थे। एक बार हबशा के बादशाह नज्जाशी ने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में एक अँगूठी तोहफ़े में भेजी। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह अँगूठी मैं उसे दूँगा जो मुझे सबसे ज़्यादा महबूब है।" सुननेवालों ने समझा कि यह ख़ुशनसीबी हज़रत आइशा (रज़ि०) को हासिल होगी। लेकिन नबी (सल्ल०) ने हज़रत उमामा (रज़ि०) को बुलाया और वह अँगूठी उनकी उँगली में पहना दी। कुछ रिवायतों में अँगूठी के बजाय सोने के हार की चर्चा है जो किसी ने तोहफ़े में भेजा था। नबी (सल्ल०) ने हज़रत उमामा (रज़ि०) को बुलाकर यह हार उनके गले में डाल दिया।

सहीह बुख़ारी में है कि नबी (सल्ल०) को हज़रत उमामा (रज़ि०) से इतनी मुहब्बत थी कि आप (सल्ल०) कभी-कभी उन्हें अपने साथ मस्जिद ले जाते थे। एक दिन आप (सल्ल०) इस हाल में मस्जिद आए कि उमामा (रज़ि०) आप (सल्ल०) के मुबारक कंधों पर सवार थीं। आप (सल्ल०) ने उन्हें अपने कंधे से न उतारा और उसी हालत में नमाज़

पढ़ने लगे। जब रुकूअ में जाते तो नन्ही उमामा (रज़ि०) को धीरे से उतार देते, जब खड़े होते तो फिर मुबारक कंधों पर बैठा लेते। इसी तरह पूरी नमाज़ पढ़ी। सन् 8 हिजरी में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत उमामा मेहरबान नाना की सरपरस्ती और निगरानी में आ गईं। सन् 11 हिजरी में नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के वक़्त हज़रत उमामा बड़ी हो चुकी थीं। कुछ मुद्दत के बाद हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो हज़रत अली (रज़ि०) ने हज़रत उमामा (रज़ि०) से निकाह कर लिया।

सन् 40 हिजरी में हज़रत अली (रज़ि०) शहीद हुए तो उनकी वसीयत के मुताबिक़ मुग़ीरा-बिन-नौफ़ल-बिन-हारिस-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब ने हज़रत हसन (रज़ि०) से इजाज़त लेकर हज़रत उमामा (रज़ि०) से निकाह कर लिया। इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि अमीर मुआविया (रज़ि०) भी हज़रत उमामा (रज़ि०) से निकाह की ख़ाहिश रखते थे, लेकिन हज़रत उमामा (रज़ि०) का रुझान मुग़ीरा की तरफ़ था, इसलिए अमीर मुआविया का पैग़ाम मिलने पर उन्होंने खुद मुग़ीरा को ख़बर की। वे फ़ौरन हज़रत हसन (रज़ि०) के पास पहुँचे और उनकी इजाज़त से हज़रत उमामा (रज़ि०) से निकाह कर लिया। उस वक़्त उनकी इद्दत पूरी हो चुकी थी।

एक रिवायत में है कि हज़रत मुग़ीरा-बिन-नौफ़ल (रज़ि०) से हज़रत उमामा (रज़ि०) का एक लड़का हुआ, जिसका नाम यहया था। लेकिन कुछ सीरत-निगारों ने लिखा है कि हज़रत उमामा (रज़ि०) की कोई औलाद नहीं हुई।

हज़रत उमामा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल मुग़ीरा-बिन-नौफ़ल की ज़िन्दगी ही में उनके घर में हुआ।

इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-हैसम (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने इनका नाम और नसब बयान नहीं किया है। इनकी चर्चा इनकी कुन्नियत ही से की गई है।

हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) का बयान है कि वे नबी (सल्ल०) की सहाबिया थीं और मरसिया कहने की कला अच्छी तरह जानती थीं।

कहा जाता है कि जब उमामा-बिन्ते-अबुल-आस (रज़ि०) बेवा हुईं तो उम्मे-हैसम ने ये शेर कहे :

"बाल सफ़ेद हो गए और क़द झुक गया,

ऐ उमामा जब तेरा शौहर जुदा हो गया,

वह अपनी ज़रूरत के वक़्त उसके पास फिरती थी,

लेकिन जब मायूस हो गई तो रोना शुरू कर दिया।"

हज़रत अली (रज़ि०) की शहादत पर भी उम्मे-हैसम (रज़ि०) ने दर्द भरा मरसिया कहा था।

हज़रत उम्मे-हैसम (रज़ि०) के और हालात नहीं मिलते।

एक सहाबिया (रज़ि०) जो अल्लाह की रिज़ा पर राज़ी थीं

नाम मालूम नहीं। एक रिवायत में है कि वे अंसार के किसी क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं और कुछ रिवायतों में है कि उनका ताल्लुक़ हबशा से था और वे मदीना में बस गई थीं। उन्हें मिर्गी की बीमारी थी। जब इस नामुराद बीमारी का दौरा पड़ता था तो उनका जिस्म बेपर्दा हो जाता था।

वे एक बार नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और बोलीं,

"ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे मिर्गी का दौरा पड़ता है और मैं बेपर्दा हो जाती हूँ, मेरे लिए दुआ कीजिए।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर तुम सब्र करो तो अल्लाह तुम्हें जन्नत में जगह देगा और अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारी सेहत और सलामती के लिए दुआ करूँ।"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं सब्र करूँगी, लेकिन इस बात की दुआ फ़रमाइए की मैं अपने जिस्म की बेपर्दगी से बच जाऊँ।"

नबी (सल्ल०) ने उनके लिए दुआ फ़रमाई। फिर उन्हें दौरा पड़ा तो वे कभी बेपर्दा नहीं हुईं। यह रिवायत सहीह मुस्लिम की है।

मुसनद अहमद में हज़रत अता (रह०) से रिवायत है कि मुझसे हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) ने कहा, "क्या मैं तुम्हें एक जन्नती औरत दिखाऊँ?" मैंने कहा, "ज़रूर दिखाइए!"

उन्होंने एक औरत की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमाया, "वह यह काले रंगवाली औरत है। वह एक बार नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आई थी।" उसके बाद ऊपरवाली रिवायत है।

सहीह बुख़ारी में हज़रत अता (रह०) से इस रिवायत में यह बढ़ोत्तरी भी है कि उम्मे-ज़ुफ़र (रज़ि०) ने उस औरत को देखा। उसका रंग काला और क़द लम्बा था और वह काबा के ग़िलाफ़ से चिमटी हुई थी।

मुसनद बज़्ज़ार में है कि जब वे ख़ातून नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और अपना हाल बयान किया तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर तुम सब्र करो तो इस सब्र की वजह से तुम क़ियामत के दिन इस हाल में आओगी कि तुमपर कोई गुनाह न होगा, न तुम से कोई हिसाब लिया जाएगा।" यह सुनकर उन्होंने सब्र इख़्तियार किया, लेकिन नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि अल्लाह से दुआ करें कि जब मुझ पर बीमारी का दौरा पड़े तो मेरा जिस्म बेपर्दा न हो।

नबी (सल्ल०) उनकी बात सुनकर बहुत ख़ुश हुए और उनके लिए बेपर्दगी से महफ़ूज़ रहने की दुआ की।

हज़रत इज़्ज़ा-बिन्ते-अबू-सुफ़ियान (रज़ि०)

हज़रत इज़्ज़ा (रज़ि०) क़ुरैश के ख़ानदान बनू-उमैया से ताल्लुक़ रखती थीं।

नसब का सिलसिला यह है : इज़्ज़ा-बिन्ते-अबू-सुफ़ियान-बिन-हर्ब-बिन-उमैया-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दे-मनाफ़।

वे उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) और अमीर मुआविया (रज़ि०) की बहन थीं।

सीरत-निगारों ने उनके इस्लाम क़बूल करने का ज़माना नहीं लिखा है, लेकिन उनके इस्लाम क़बूल करने पर सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

एक रिवायत में है कि एक बार उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी ख़ाहिश है कि आप मेरी बहन इज़्ज़ा से भी निकाह कर लें।" (शायद उस वक़्त हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) को यह मालूम नहीं होगा कि अल्लाह ने दो बहनों को एक निकाह में जमा करने से मना किया है।)

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या तुम इस बात को पसंद करती हो कि तुम्हारी बहन सौत बने?"

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं अकेली ही तो आपकी बीवी नहीं हूँ, आपकी और भी बीवियाँ हैं। मेरा दिल चाहता है कि मेरी बहन को भी यह ख़ुशनसीबी हासिल हो।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐसा करना जाइज़ नहीं है।"

एक और रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इज़्ज़ा मेरी साली है और बीवी की ज़िन्दगी में उसकी बहन से निकाह जाइज़ नहीं।"

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने कहा, "हमने तो सुना है कि आप अबू-सलमा (रज़ि०) की बेटी से निकाह का इरादा रखते हैं।" नबी (सल्ल०) ने हैरत से फ़रमाया, "अबू-सलमा (रज़ि०) की बेटी से!"

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने कहा, "जी हाँ।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर वह मेरी रबीबा (सौतेली बेटी) न होती तब भी मेरा निकाह उससे जाइज़ नहीं था। वह तो मेरे दूध-शरीक भाई की बेटी है, मैंने और अबू-सलमा (रज़ि०) ने सुवैबा (रज़ि०) का दूध पिया है।"

हज़रत इज़्ज़ा की ज़िन्दगी के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अव्वाम (रज़ि०)

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-अव्वाम (रज़ि०) क़ुरैश के ख़ानदान बनू-असद-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा से थीं।

नसब का सिलसिला यह है : ज़ैनब-बिन्ते-अव्वाम-बिन-ख़ुवैलिद-बिन-असद-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-क़ुसई।

हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) उनके सगे भाई थे और उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) फूफी थीं।

उन्होंने अपने भाई हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) के साथ इस्लाम क़बूल किया। उन्हें शेर और शायरी में भी काफ़ी दिलचस्पी थी। जमल की लड़ाई के मौक़े पर जब हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) शहीद हो गए तो उन्होंने एक दर्द-भरा मरसिया कहा, जिसके कुछ अशआर ये हैं —

"तुमने नबी के हवारी (मददगार) और हम-ज़ुल्फ़ को क़त्ल किया
इसलिए तुमको जहन्नम की बशारत हो,

इससे पहले उसमान की शहादत का सदमा सह चुकी हूँ,
और उसपर आठ-आठ आँसू रो चुकी हूँ,
ऐ मेरी आँख! (अब) आँसू बहाओ,
उस सख़ी और खुले हाथवाले शख़्स पर।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात किताबों में नहीं मिलते।

हज़रत इज़्ज़ा-बिन्ते-ख़ाबिल (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने इनका हसब-नसब नहीं लिखा।

तबरानी (रह०) ने इनसे रिवायत की है कि मैं नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई तो आप (सल्ल०) ने मुझसे इन बातों पर बैअत फ़रमाई :

- ज़िना (बदकारी) से बचना।
- चोरी न करना।
- औलाद को ज़िन्दा दफ़न न करना, न छिपकर न खुले तौर पर।

इज़्ज़ा (रज़ि०) कहती हैं कि खुले तौर पर ज़िन्दा दफ़न करना तो मैं समझ गई लेकिन छिपकर ज़िन्दा दफ़न करना मेरी समझ में न आया। न मैंने नबी (सल्ल०) से इसका मतलब पूछा और न आप (सल्ल०) ने ही वाज़ेह किया। लेकिन फिर मेरे दिल में इसका मतलब इस तरह आया कि औलाद को किसी तरह ख़राब न करूँ, यानी उसकी परवरिश और तरबियत अच्छी तरह करूँ और बच्चे को जान-बूझकर बरबाद न करूँ।

हज़रत इज़्ज़ा-बिन्ते-ख़ाबिल (रज़ि०) के बस इतने ही हालात मालूम हैं।

हज़रत उमैमा-बिन्ते-रुक़ैक़ा (रज़ि०)

सीरत-निगारों ने इनका हसब-नसब बयान नहीं किया है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि०) से रिवायत है कि उमैमा-बिन्ते-रुक़ैक़ा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में बैअत करने के लिए हाज़िर हुईं। नबी (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया—

> "मैं तुमसे इस बात पर बैअत लेता हूँ कि खुदा के साथ किसी को शरीक न करना, चोरी न करना, ज़िना (बदकारी) न करना, अपनी औलाद को क़त्ल न करना, दूसरे की औलाद को अपनी औलाद न बताना, मातम न करना और बेपर्दा बाहर न निकलना।"

एक और रिवायत में खुद हज़रत उमैमा-बिन्ते-रुक़ैक़ा (रज़ि०) का बयान है कि मैं कुछ औरतों के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में बैअत के लिए हाज़िर हुई और आप (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम आपसे इन बातों पर बैअत करते हैं कि अल्लाह के साथ किसी को शरीक न करेंगे, चोरी न करेंगे, किसी पर बुहतान (लांछन) न लगाएँगे और किसी भले काम में आपकी नाफ़रमानी न करेंगे।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह भी कहो कि जहाँ तक हमसे हो सकेगा और जैसी हममें ताक़त होगी।"

हमने कहा, "अल्लाह और उसका रसूल हमसे ज़्यादा हमपर रहम करनेवाला है।" फिर हमने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अपना हाथ बढ़ाइए ताकि हम बैअत करें।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं औरतों से हाथ नहीं मिलाता। मेरा कहना सौ औरतों के लिए भी उसी तरह काफ़ी है, जिस तरह एक औरत के लिए।"

हज़रत उमैमा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत आमिना-बिन्ते-रुक़ैश (रज़ि०)

हज़रत आमिना (रज़ि०) क़ुरैश के किसी क़बीले से थीं। इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आई थीं। जब मदीना की हिजरत की इजाज़त मिली तो वे अपने भाइयों यज़ीद-बिन-रुक़ैश (रज़ि०) और सईद-बिन-रुक़ैश (रज़ि०) के साथ हिजरत करके मदीना चली गईं, और फिर सारी ज़िन्दगी वहीं गुज़ारी।

और हालात मालूम नहीं हो सके।

हज़रत सलमा-बिन्ते-ज़ारिअ-बिन-उरवा (रज़ि०)

अल्लामा वाक़िदी ने इनकी गिनती सहाबियात में की है और लिखा है कि हज़रत सलमा (रज़ि०) ने इस्लाम के दुश्मनों से होनेवाली कई लड़ाइयों में हिस्सा लिया और जख़्मियों की मरहम-पट्टी और बीमारों की देखभाल का काम किया। सन् 16 हिजरी में शहूरा की लड़ाई में शरीक हुईं और ऐसी बहादुरी से लड़ीं कि इस्लाम के दुश्मनों का मुँह फेर दिया।

और हालात मालूम नहीं हो सके।

हज़रत सुबैआ असलमिया (रज़ि०)

हज़रत सुबैआ (रज़ि०) हारिस असलमी की बेटी थीं। उनका निकाह मशहूर सहाबी हज़रत सईद-बिन-ख़ौला (रज़ि०) से हुआ। वे पहले-पहल ईमान लानेवाले लोगों (साबिक़ीन) में से थे। पहले हबशा फिर मदीना हिजरत करने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई। बद्र, उहुद, अहज़ाब और हुदैबिया में नबी (सल्ल०) के साथ थे। वे नबी (सल्ल०) के साथ हज्जतुल-वदाअ में मक्का आए। कुछ दिन बीमार रहे फिर वहीं उनका इन्तिक़ाल हो गया। नबी (सल्ल०) को उनके इन्तिक़ाल का बहुत सदमा हुआ क्योंकि आप (सल्ल०) मुहाजिरों के लिए मक्का में मरना पसन्द नहीं करते थे।

उनके इन्तिक़ाल के दो दिन बाद हज़रत सुबैआ (रज़ि०) के एक बच्चा हुआ, जिसका कुछ दिनों के बाद इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत सुबैआ (रज़ि०) से रिवायत है कि जब मैं पाक हुई तो मैंने शृंगार कर लिया। क़बीला अब्दुद-दार के एक शख़्स अबू-सनाबिल-बिन-बाकक (रज़ि०) मेरे घर आए और कहा कि मालूम होता है कि तुम दूसरे निकाह का इरादा रखती हो। खुदा की क़सम! जब तक चार महीने दस दिन न गुज़र जाएँ तुम दूसरा निकाह नहीं कर सकतीं।

मैं यह सुनकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और आप (सल्ल०) से इस मसले का हुक्म पूछा।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बच्चे की पैदाइश के साथ तेरी इद्दत पूरी हो गई।"

हज़रत सुबैआ (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हो सके।

हज़रत उम्मे-हुसैन (रज़ि०)

इमाम मुस्लिम (रह०) ने हज़रत उम्मे-हुसैन (रज़ि०) की गिनती सहाबियात में की है। वे उनसे रिवायत करते हैं कि मैंने उसामा (रज़ि०) और बिलाल (रज़ि०) को देखा कि उनमें से एक (बिलाल रज़ि० ने नबी सल्ल०) की ऊँटनी की नकेल थाम रखी थी और दूसरे (उसामा रज़ि०) ने आप (सल्ल०) के सिर पर साए के लिए कपड़ा तान रखा था और उस वक़्त आप (सल्ल०) जमूरए-अक़बा (बड़े सुतून) पर कंकरियाँ मार रहे थे।

हज़रत सलामा-बिन्ते-हुर्र (रज़ि०)

इमाम अहमद (रह०), अबू-दाऊद (रह०) और इब्ने-माजा (रह०) ने इनको सहाबियात में शामिल किया है और इनसे रिवायत की है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि क़ियामत की निशानियों में से एक निशानी

यह है कि लोग इमामत करना नहीं चाहेंगे और उनको कोई नमाज़ पढ़ानेवाला नहीं मिलेगा।

हज़रत युसैरा-बिन्ते-यासिर (रज़ि०)

हज़रत युसैरा (रज़ि०) मुहाजिर सहाबिया हैं। उन्होंने ग्यारह हदीसें रिवायत की हैं। तस्बीह को उँगलियों पर गिनने की मशहूर रिवायत उनसे ही बयान की गई है।

वे कहती हैं कि नबी (सल्ल०) ने हमसे फ़रमाया कि तुम *"सुबहानल्लाह"* और *"ला-इला-ह इल्लल्लाह"* और *"सुबहा-नल-मलिकिल-कुद्दूस* या *सुब्बूहुन-कुद्दूसुन-रब्बना व रब्बुल-मलाइकति वर्रूह"* पढ़ना अपने लिए ज़रूरी समझो। इसे अपनी उँगलियों पर गिनो इसलिए कि उँगलियों से पूछा जाएगा और ये जवाब देंगी। इसमें सुस्ती न करना, नहीं तो ख़ुदा की रहमत तुमको भुला देगी। (तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

हज़रत बिन्ते-अब्दुल्लाह-बिन-साबित (रज़ि०)

नाम मालूम नहीं है। वे हज़रत अबू-रबीअ अब्दुल्लाह-बिन-साबित अंसारी (रज़ि०) की बेटी थीं और सहाबिया थीं।

मुसनद अबू-दाऊद में रिवायत है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-साबित (रज़ि०) बीमार हुए तो नबी (सल्ल०) उनका हाल पूछने तशरीफ़ ले गए। वे बेहोश थे, नबी (सल्ल०) ने उन्हें आवाज़ दी, लेकिन उन्हें कुछ ख़बर नहीं हुई। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अफ़सोस! अबू-रबीअ अब तुमपर हमारा ज़ोर नहीं चलता।" यह सुनकर घर की औरतों में कुहराम मच गया और वे रोने लगीं। लोगों ने मना किया तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इस वक़्त रोने दो, हाँ मरने के बाद नहीं रोना चाहिए।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की बेटी ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इनकी शहादत की उम्मीद थी, क्योंकि इन्होंने जिहाद के लिए पूरी

तैयारी कर ली थी।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इनको नियत का सवाब मिल चुका।"

और ज़्यादा हालात नहीं मिल सके।

क़ौम की भलाई चाहनेवाली बनू-तमीम की एक सहाबिया (रज़ि०)

अरब में दहना नामी एक जगह है। नबी (सल्ल०) के ज़माने में एक तरफ़ बनू-तमीम आबाद थे और दूसरे तरफ़ बक्र-बिन-वाइल के लोग रहते थे। एक बार बक्र-बिन-वाइल के एक शख़्स, जिनका नाम हुरैस-बिन-हस्सान था, ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि दहना की ज़मीन बक्र-बिन-वाइल को दे दी जाए।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमान लिखने का हुक्म दे दिया। इत्तिफ़ाक़ से उस वक़्त वहाँ बनू-तमीम की एक ख़ातून भी मौजूद थीं। नबी (सल्ल०) ने उनकी तरफ़ देखा तो वे कहने लगीं—

> "ऐ अल्लाह के रसूल! बक्र-बिन-वाइल जिस ज़मीन पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं वह ऊँटों और बकरियों की चरागाह है और उसी के पास बनू-तमीम की औरतें और बच्चे भी रहते हैं।"

नबी (सल्ल०) ने कहा, "बेचारी सच कहती हैं, फ़रमान न लिखो। एक मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है। एक नहर और एक चरागाह से सब लोग बराबर-बराबर फ़ायदा उठा सकते हैं।"

एक रेगिस्तानी सहाबिया (रज़ि०)

एक बार नबी (सल्ल०) किसी ग़जवा (लड़ाई) से वापस तशरीफ़ ला रहे थे। रास्ते में एक पड़ाव मिला, वहाँ कुछ लोग बैठे थे। नबी (सल्ल०) ने उनसे पूछा, "तुम कौन हो?"

उन्होंने कहा, "हम मुसलमान हैं।"

थोड़ी दूर पर एक ख़ातून बैठी चूल्हा सुलगा रही थीं और उनका नन्हा बच्चा क़रीब बैठा था। जब आग ख़ूब भड़क उठी तो वे ख़ातून बच्चे को गोद में लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और बोलीं—

"ऐ अल्लाह के रसूल! एक माँ को अपने बच्चे से जितनी मुहब्बत है क्या अल्लाह अपने बन्दों पर उससे ज़्यादा मेहरबान नहीं है?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, बेशक है।"

उन्होंने कहा, "कोई माँ तो अपने बच्चों को आग में डालना पसन्द नहीं करती।"

(उनका मतलब यह था कि अगर कोई माँ अपने बच्चे को आग में नहीं डाल सकती तो अल्लाह अपने बन्दों को जहन्नम की आग के हवाले कैसे करेगा!)

ख़ातून की यह बात सुनकर नबी (सल्ल०) रोने लगे, फिर सिर उठाकर फ़रमाया—

"अल्लाह सिर्फ़ उस बन्दे को अज़ाब देगा जो सरकश और नाफ़रमान है और उसको 'एक' नहीं कहता।"

एक दूसरी रिवायत में यह वाक़िआ इस तरह बयान किया गया है कि जब आग की लपट उठती तो वे ख़ातून अपने बच्चे को एक तरफ़ हटा लेतीं। उन्होंने पहले कभी नबी (सल्ल०) को नहीं देखा था लेकिन वे इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं। वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और बोलीं—

"अल्लाह के रसूल आप ही हैं?"

नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया, "मैं ही हूँ!"

उन्होंने कहा, "मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, क्या अल्लाह सबसे बढ़कर रहम करनेवाला नहीं है?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बेशक है।"

उन्होंने कहा, "क्या ख़ुदा अपने बन्दों पर उससे ज़्यादा मेहरबान नहीं है, जितना माँ-बाप अपने बच्चों पर मेहरबान होते हैं।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बेशक है।"

उन्होंने कहा, "एक माँ तो अपने बच्चे को आग में नहीं डाल सकती। (अल्लाह, जो अपने बन्दों पर सबसे बढ़कर मेहरबान है, उन्हें आग में कैसे डालेगा!)

नबी (सल्ल०) ने यह सुनकर अपना सिर झुका लिया और आप (सल्ल०) रोने लगे। फिर सिर उठाया और फ़रमाया, "अल्लाह अपने बन्दों में से सिर्फ़ उस सरकश बन्दे को अज़ाब देगा जो अल्लाह से नहीं डरता और 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं) कहने पर तैयार नहीं होता।"

हज़रत क़ुतैला-बिन्ते-नज़्र-बिन-मालिक (रज़ि०)

हज़रत क़ुतैला (रज़ि०) इस्लाम के मशहूर दुश्मन नज़्र-बिन-हारिस की बेटी थीं। नज़्र का ताल्लुक़ क़ुरैश के क़बीले बनू-अब्दुद-दार से था। वह मक्का के मुशरिक सरदारों में से एक था। हज़रत क़ुतैला (रज़ि०) को अल्लाह ने इस्लाम क़बूल करने की तौफ़ीक़ दी और वे सहाबियात में शामिल हुईं। उन्हें शायरी में भी दिलचस्पी थी। बद्र की लड़ाई के बाद नबी (सल्ल०) के हुक्म से हज़रत अली (रज़ि०) ने नज़्र-बिन-हारिस को क़त्ल कर दिया। क़ुतैला (रज़ि०) को बाप के क़त्ल की ख़बर मिली तो उन्होंने दिलों को तड़पा देनेवाला एक मरसिया बाप के ग़म में लिखा। जब यह मरसिया नबी (सल्ल०) को सुनाया गया तो आप (सल्ल०)

इतना रोए कि मुबारक दाढ़ी भीग गई। कुछ रिवायतों में है कि नबी (सल्ल०) ने इस मौक़े पर फ़रमाया कि अगर ये अशआर मैंने पहले सुने होते तो मैं नज़्र को क़त्ल नहीं कराता।

हज़रत क़ुतैला (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत उफ़ैरा-बिन्ते-ग़िफ़ार हुमैरी (रज़ि०)

अल्लामा वाक़िदी ने हज़रत उफ़ैरा (रज़ि०) को सहाबियात में शामिल किया है। वे लिखते हैं कि उन्होंने कई लड़ाइयों में हिस्सा लिया। हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में शहूरा की लड़ाई जो सन् 14 हिजरी में हुई और यरमूक की लड़ाई जो सन् 15 हिजरी में हुई, में भी वे बड़ी बहादुरी से रूमियों से लड़ीं।

इससे ज़्यादा हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत नुअ्म-बिन्ते-क़न्नास (रज़ि०)

सीरत की कुछ किताबों में इनकी चर्चा मिलती है, जिससे मालूम होता है कि वे सहाबियात में शामिल थीं। शेर और शायरी की कला भी अच्छी तरह जानती थीं। वाक़िदी (रह०) का बयान है कि वे इस्लाम के दुश्मनों से होनेवाली कई लड़ाइयों में शरीक रहीं। यरमूक की लड़ाई में दूसरी औरतों के साथ मिलकर उन्होंने रूमियों का ऐसी बहादुरी से मुक़ाबला किया कि उनके दाँत खट्टे कर दिए। अल्लाह ने उन्हें इन्तिज़ाम करने की सलाहियत भी दी थी, इसलिए कई लड़ाइयों में इस्लामी फ़ौज के रसद का इन्तिज़ाम उनके हवाले किया गया।

इनके और हालात नहीं मिले।

हज़रत मुआज़ा ग़िफ़ारिया (रज़ि०)

हज़रत मुआज़ा (रज़ि०) बनू-ग़िफ़ार क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं और सहाबियात में शामिल थीं। कई लड़ाइयों में शरीक हुईं और ज़ख़्मियों की देखभाल और ख़िदमत का काम अंजाम दिया। कहा जाता है कि उन्हें दवाओं और चीर-फाड़ से इलाज करने में महारत हासिल थी।

हज़रत लुबना-बिन्ते-सवार (रज़ि०)

अल्लामा वाक़िदी (रह०) ने हज़रत लुबना (रज़ि०) की गिनती सहाबियात में की है और बयान किया है कि उन्होंने इस्लाम के दुश्मनों के ख़िलाफ़ कई लड़ाइयों में हिस्सा लिया और ज़ख़्मियों की देखभाल की ख़िदमत अंजाम दी। सन् 14 हिजरी में होनेवाली शहूरा की लड़ाई में वे मर्दों के कंधे-से-कंधा मिलाकर बड़ी जाँबाज़ी से लड़ीं और कई रूमियों को क़त्ल किया।

और हालात नहीं मिले।

हज़रत कुऐबा-बिन्ते-साद (रज़ि०)

हज़रत कुऐबा-बिन्ते-साद (रज़ि०) का ताल्लुक़ अरब के क़बीले बनू-असलम से था और सहाबिया थीं। ख़ैबर की लड़ाई में दूसरी औरतों के साथ शरीक हुईं। वे तीर उठाकर लाती थीं और मुजाहिदों को सत्तू पिलाती थीं।

और हालात नहीं मिले।

ख़सअम क़बीले की एक सहाबिया (रज़ि०)

सन् 10 हिजरी में नबी (सल्ल०) हज्जतुल-वदाअ के लिए मक्का तशरीफ़ ले गए। क़ुरबानी के दिन मुज़दलफ़ा से मिना आते हुए नबी

(सल्ल०) ने अपने चचेरे भाई हज़रत फ़ज़्ल-बिन-अब्बास (रज़ि०) को अपनी सवारी पर पीछे बैठा लिया।

रास्ते में ख़सअम क़बीले की एक ख़ातून आप (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह ने अपने बन्दों पर हज फ़र्ज़ किया है। मेरे बाप बहुत बूढ़े हैं और सवारी पर बैठना उनके लिए मुमकिन नहीं है, इसलिए हज करने से लाचार हैं। क्या मैं उनकी तरफ़ से हज और उमरा कर सकती हूँ?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया,

"हाँ अपने बाप की तरफ़ से हज और उमरा करो।"

सीरत-निगारों ने इन सहाबिया का नाम और नसब बयान नहीं किया।

एक परदेसी सहाबिया (रज़ि०)

मुसनद अबू-दाऊद में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक शख़्स एक हबशी लौंडी को लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझपर एक मोमिन ग़ुलाम आज़ाद करना वाजिब हो गया है, क्या मैं इस कनीज़ को आज़ाद कर सकता हूँ?"

नबी (सल्ल०) ने उस कनीज़ से पूछा, "अल्लाह कहाँ है?" उसने उँगली से आसमान की तरफ़ इशारा कर दिया।

फिर नबी (सल्ल०) ने पूछा, "मैं कौन हूँ?"

उसने पहले आप (सल्ल०) की तरफ़ और फिर आसमान की तरफ़ इशारा किया, जिससे यह मतलब ज़ाहिर हो रहा था कि आप (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। इस पर नबी (सल्ल०) ने उनको लानेवाले उस शख़्स से कहा, "इसे आज़ाद कर दो, यह मोमिना है।"

हज़रत अफ़रा-बिन्ते-उबैद अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत अफ़रा (रज़ि०) ख़ज़रज क़बीले के सबसे शरीफ़ और इज़्ज़तदार ख़ानदान बनू-नज्जार से ताल्लुक़ रखती थीं।

इनके नसब का सिलसिला यह है : अफ़रा-बिन्ते-उबैद-बिन-सअ़लबा-बिन-उबैद-बिन-सअ़लबा-बिन-ग़न्म-बिन-मालिक-बिन-नज्जार।

उनका निकाह हारिस-बिन-रिफ़ाआ से हुआ। उनके तीन बेटे मुआज़ (रज़ि०), मुअव्विज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) थे। वे तीनों नबी (सल्ल०) के जाँनिसार सहाबी थे। बद्र की लड़ाई में पहले यही तीनों भाई उत्बा, शैबा और वलीद-बिन-उत्बा के मुक़ाबले के लिए निकले, लेकिन नबी (सल्ल०) ने उनको वापस बुला लिया। उसके बाद घमासान की लड़ाई के बीच हज़रत मुआज़ (रज़ि०) और मुअव्विज़ (रज़ि०) ने अबू-जह्ल पर हमला किया और उसे बुरी तरह ज़ख़्मी कर दिया। ये तीनों भाई माँ के ताल्लुक़ से इब्ना-ए-अफ़रा (अफ़रा के बेटे) मशहूर हुए।

अल्लामा ज़रक़ानी ने हाफ़िज़ इब्ने-हजर (रह०) के हवाले से लिखा है कि हारिस-बिन-रिफ़ाआ का नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही इन्तिक़ाल हो चुका था। उसके बाद अफ़रा (रज़ि०) ने अबू-बुकैर या बुकैर-बिन-अब्द या लैला लैसी से निकाह कर लिया था। उनसे उनके चार बेटे पैदा हुए, अयास (रज़ि०), आमिर (रज़ि०), ख़ालिद (रज़ि०) और आक़िल (रज़ि०)। ये चारों भाई 'साबिक़ूनल-अव्वलून' यानी इस्लाम के शुरू के ज़माने में ईमान लानेवालों में से थे। बद्र की लड़ाई में चारों भाई अपने तीन सौतेले भाइयों मुआज़ (रज़ि०), मुअव्विज़ (रज़ि०) और औफ़ (रज़ि०) के साथ शरीक थे। यानी हज़रत अफ़रा (रज़ि०) वे खुशनसीब ख़ातून थीं जिनके सात बेटों को बद्र की लड़ाई में शरीक होने की खुशनसीबी हासिल हुई। हज़रत अफ़रा (रज़ि०) की इस खुशनसीबी

में कोई दूसरी ख़ातून उनके बराबर नहीं है।

ज़रक़ानी (रह०) की इस रिवायत के दुरुस्त होने के बारे में यक़ीन से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि अक्सर रिवायतों में यह बात बयान की गई है कि सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई के मौक़े पर हज़रत मुआज़ (रज़ि०) और हज़रत मुअव्विज़ (रज़ि०) नौजवान थे।

अगर ज़रक़ानी की रिवायत को दुरुस्त मान लिया जाए तो वे नौजवान नहीं, बल्कि, अधेड़ उम्र के होते।

दूसरी सूरत यह हो सकती है कि हज़रत अफ़रा (रज़ि०) ने अबू-बुकैर से पहले निकाह किया हो और उसके इन्तिक़ाल के बाद हारिस-बिन-रिफ़ाआ के निकाह में आई हों।

हज़रत अफ़रा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत उम्मे-सिनान (रज़ि०)

हज़रत उम्मे-सिनान (रज़ि०) मशहूर सहाबी हज़रत अबू-सिनान-बिन-मुहसिन (रज़ि०) की बीवी थीं। उनका नाम और नसब मालूम नहीं है। उनके बेटे हज़रत सिनान (रज़ि०) भी नबी (सल्ल०) के जाँनिसार सहाबी थे।

सहीह बुख़ारी में है कि नबी (सल्ल०) हज्जतुल-वदाअ से वापस मदीना तशरीफ़ लाए तो हज़रत उम्मे-सिनान (रज़ि०) से पूछा, "तुम हमारे साथ हज पर क्यों नहीं गईं?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे पास सवारी नहीं थी।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रमज़ान के महीने में उमरा कर लेना क्योंकि रमज़ान का उमरा हज के बराबर है।"

एक और रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "रमज़ान में

उमरा करना मेरे साथ हज करने के बराबर है।"

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने एक सहाबिया उम्मे-सिनान-बिन्ते-ख़ैशमा-बिन-खुरशा मुज़हजी की चर्चा की है जिन्होंने सिफ़्फ़ीन की लड़ाई में हज़रत अली (रज़ि०) का साथ दिया था। यह मालूम नहीं कि वे उम्मे-सिनान, अबू-सिनान की बेवा थीं या कोई और सहाबिया थीं।

एक गुमनाम सहाबिया (रज़ि०)

सहीह बुख़ारी में रिवायत है कि नबी (सल्ल०) एक बार कहीं तशरीफ़ ले जा रहे थे, रास्ते में आप (सल्ल०) ने देखा कि एक ख़ातून एक क़ब्र के पास बैठी चीख़-चीख़कर रो रही हैं। आप रुक गए और उनसे फ़रमाया, "सब्र करो! सब्र करो!" वे ख़ातून आपको पहचानती नहीं थीं, बड़ी कड़वाहट से बोलीं, "जाओ, जाओ, तुम्हें क्या मालूम मुझ पर क्या बीत रही है!"

नबी (सल्ल०) ख़ामोशी से आगे तशरीफ़ ले गए। लोगों ने ख़ातून से कहा, "तूने पहचाना नहीं, वे अल्लाह के रसूल थे।"

यह सुनकर वे सन्नाटे में आ गईं, रोना-धोना भूल गईं और दौड़ती हुई नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में गईं और बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान, मैं आपको पहचानती नहीं थी, इसलिए मुझसे गुस्ताख़ी हुई। ख़ुदा के लिए मुझे माफ़ कर दीजिए!"

नबी (सल्ल०) ने बड़ी नर्मी से फ़रमाया, "सब्र तो वही है जो मुसीबत के वक़्त किया जाए।"

हज़रत मुआज़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह (रज़ि०)

नाम मुआज़ा था। वे मदीना की रहनेवाली थीं।

नसब-नामा यह है : मुआज़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह-बिन-हिब्र-बिन-ज़ुरैर-

बिन-उमैया-बिन-ख़ुदारा-बिन-हारिस-बिन-ख़ज़रज।

वे मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई-बिन-सलूल की कनीज़ थीं। वे बहुत नेक और भली थीं। नबी (सल्ल०) मदीना तशरीफ़ लाए तो उन्होंने इस्लाम क़ुबूल कर लिया और नबी (सल्ल०) से बैअत करने की ख़ुशनसीबी भी हासिल कर ली। अब्दुल्लाह-बिन-उबई उनपर तरह-तरह के ज़ुल्म करता था और उनको बदकारी पर मजबूर करता था, लेकिन वे पाकदामनी की ज़िन्दगी गुज़ारने पर अटल थीं।

जब क़ुरआन मजीद की यह आयत नाज़िल हुई—

"और अपनी लौंडियों को, जो पाकदामन रहना चाहती हैं, दुनिया के फ़ायदे के लिए हरामकारी पर मजबूर न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-33)

तो हज़रत मुआज़ा को अब्दुल्लाह-बिन-उबई के ज़ुल्म के शिकंजे से छुटकारा मिला।

उनका पहला निकाह सहूल-बिन-क़ुरज़ा (रज़ि०) से हुआ, उनसे एक लड़का अब्दुल्लाह और एक लड़की उम्मे-सईद पैदा हुई। सहूल (रज़ि०) के इन्तिक़ाल (या उनके तलाक़ देने) के बाद उनका निकाह हुमैर-बिन-अदी से हुआ। उनसे हारिस और अदी दो लड़के और एक लड़की उम्मे-साद पैदा हुई। हुमैर-बिन-अदी ने किसी वजह से तलाक़ दे दी तो आमिर-बिन-अदी से निकाह हुआ। उससे एक लड़की उम्मे-हबीब पैदा हुई।

हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) ने लिखा है कि वे इल्म रखनेवाली मुस्लिम ख़ातून थीं।

उनके और हालात नहीं मिलते।

हज़रत मुसैका व हज़रत उमैमा (रज़ि०)

ये दोनों भी मुनाफ़िक़ों के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई की कनीज़ थीं और वह उनको बदकारी पर मजबूर करता था। नबी (सल्ल०) की हिजरत के बाद उन दोनों ने इस्लाम क़बूल कर लिया और अब्दुल्लाह का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। अब्दुल्लाह ने ग़ुस्से में भड़ककर उन दोनों पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढाए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) को उनकी मुसीबतों का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने दोनों को अपने घर के ज़नानख़ाने में छिपा दिया। इसपर अब्दुल्लाह ग़ुस्से में आग-बगूला हो गया और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से कहने लगा कि आपको इस बात का हक़ नहीं है कि आप हमारी लौंडियों को बहकाएँ और अपने घर में पनाह दें। लेकिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने उसकी एक न सुनी। उस वक़्त क़ुरआन की यह आयत नाज़िल हुई—

"और अपनी लौंडियों को जो पाकदामन रहना चाहती हैं, दुनिया के फ़ायदे के लिए हरामकारी पर मजबूर न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-33)

इस तरह हज़रत मुसैका (रज़ि०) और उमैमा (रज़ि०) को इस्लाम की बदौलत अब्दुल्लाह के ज़ुल्म से छुटकारा मिला।

ये दोनों सहाबियात में शामिल हैं, इसपर सीरत-निगारों का इत्तिफ़ाक़ है।

हज़रत सलमा अंसारिया (रज़ि०)

हज़रत सलमा (रज़ि०) अंसार के क़बीला बनू-अदी-बिन-नज्जार से थीं। अबू-दाऊद (रह०) के बयान के मुताबिक़ वे दूर के रिश्ते से नबी (सल्ल०) की ख़ाला होती थीं। उन्होंने नबी (सल्ल०) के साथ दोनों क़िबलों यानी बैतुल-मक़दिस और काबा शरीफ़ की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ी है।

वे फ़रमाती हैं कि मैं अंसार की कुछ औरतों के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और इन शर्तों पर आप (सल्ल०) से बैअत की :

1. हम ख़ुदा के साथ किसी को शरीक न करें।
2. चोरी न करें।
3. बदकारी न करें।
4. अपनी औलाद को क़त्ल न करें।
5. कोई ऐसा बुहतान (आरोप) न लगाएँ जिसे अपने हाथों और पैरों के बीच गढ़ें। (यानी दूसरे की औलाद को अपनी औलाद बताएँ।)
6. किसी भले काम में नबी (सल्ल०) की नाफ़रमानी न करें।
7. अपने शौहरों से खोट-कपट न करें।

बैअत करने के बाद जब हम वापस हुए तो मैंने एक औरत से कहा, "नबी (सल्ल०) के पास वापस जा और पूछ कि शौहर के साथ खोट-कपट करने का क्या मतलब है?"

उसने वापस जाकर नबी (सल्ल०) से यह बात पूछी तो आपने फ़रमाया, "इसका मतलब है शौहर का माल लेकर किसी ग़ैर को देना।"

हज़रत सलमा के और हालात नहीं मिल पाए।

हज़रत सौदा (रज़ि०)

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत सौदा-बिन्ते-ज़मआ (रज़ि०) के अलावा मक्का में सौदा नाम की एक और ख़ातून थीं। वे भी क़ुरैश के किसी क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं। उन्होंने नबी (सल्ल०) की हिजरत से पहले ही इस्लाम क़बूल कर लिया और सहाबियात में शामिल हुईं। उनके

शौहर का इन्तिक़ाल हो चुका था और वे बेवगी (विधवा) की ज़िन्दगी गुज़ार रही थीं।

एक बार नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह का इरादा किया तो उन्होंने कहा–

"ऐ अल्लाह के रसूल! आप मुझको सारी दुनिया से ज़्यादा प्यारे हैं मगर मेरे पाँच बच्चे हैं। मुझे यह बात पसन्द नहीं कि वे आपके सिरहाने रोएँ, चिल्लाएँ।"

नबी (सल्ल०) ने उनकी बात को पसन्द फ़रमाया, तारीफ़ की और उनसे निकाह का इरादा छोड़ दिया।

हज़रत ग़ज़ीया (रज़ि०)

हज़रत ग़ज़ीया (रज़ि०) मक्का के पड़ोस के रेगिस्तानी इलाक़े की रहनेवाली देहाती ख़ातून थीं। अल्लाह ने उन्हें नेक तबीअत दी थी। उन्होंने नुबूवत के शुरू के ज़माने में ही इस्लाम क़बूल कर लिया था।

मशहूर इस्लामी स्कॉलर डा० मुहम्मद हमीदुल्लाह ने अपनी किताब "रसूले-अकरम (सल्ल०) की सियासी ज़िन्दगी" में लिखा है कि यह ख़ातून मुसलमान होने के बाद क़ुरैश की औरतों को इस्लाम की दावत देने लगीं। चूँकि वे क़ुरैशी नहीं थीं बल्कि रेगिस्तानी देहाती ख़ातून थीं इसलिए उन्हें शहर से निकाल देने का फ़ैसला किया गया। उन्हें क़ैद करके एक क़ाफ़िले के हवाले किया गया ताकि इसी क़ैद की हालत में उन्हें उनके क़बीले तक पहुँचा दिया जाए। क़ाफ़िलेवालों ने उन्हें एक ऊँट की नंगी पीठ पर रस्सियों से बाँध दिया। हज़रत ग़ज़ीया (रज़ि०) का बयान है कि उन्होंने मुझे एक बार भी खाना-पानी नहीं दिया बल्कि कहीं पड़ाव डालते तो हाथ-पाँव बाँधकर धूप में डाल देते। तीन दिन-रात इसी तरह गुज़रे तो मेरी हालत ख़राब हो गई और मुझे कुछ भी होश नहीं रहा।

एक रात मैं इसी हालत में पड़ी थी कि अचानक 'ग़ैब' से कोई

चीज़ मेरे मुँह को लगी। मैंने महसूस किया कि यह पानी है और सचमुच यह पानी था। मैंने जी भरकर पिया और होश में आ गई।

सुबह को जब लोग उठे तो मेरी हालत को बदला हुआ और बेहतर पाया तो समझे कि शायद रात को मैंने किसी तरह अपने बन्धन खोलकर क़ाफ़िले का पानी चोरी से पी लिया है। लेकिन न तो मेरी रस्सियाँ खुली थीं और न मशकीज़ों के मुँह। जब उन्हें इत्मीनान हो गया कि कोई चोरी नहीं हुई बल्कि यह अल्लाह की मेहरबानी और 'ग़ैब' से मदद है तो उन सबपर बड़ा असर हुआ, उन्होंने तौबा की और इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत ग़ज़ीया (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बेहद अक़ीदत थी और इन्ही के लिए यह आयत नाज़िल हुई थी —

> "और वह मोमिन औरत जिसने अपने-आपको नबी के लिए 'हिबा' किया हो अगर नबी उसे निकाह में लेना चाहें।"

हज़रत ग़ज़ीया के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत बिन्ते-ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०)

वे बुलन्द मर्तबा सहाबी हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०) की बेटी थीं और सहाबियात में शामिल थीं।

इब्ने-साद (रह०) ने उनसे रिवायत की है कि मेरे बाप हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०) को किसी लड़ाई में जाना पड़ा। घर से चलते वक़्त वे एक बकरी छोड़ गए और कह गए कि जब तुम उस बकरी को दूहना चाहो तो इसे 'असहाबे-सुफ़्फ़ा' के पास ले जाना। मैं उस बकरी को असहाबे-सुफ़्फ़ा' के पास ले गई, उस वक़्त नबी (सल्ल०) वहाँ तशरीफ़ रखते थे। आप (सल्ल०) ने उस बकरी को पकड़ा और उसके पैर रस्सी से बाँध दिए। फिर आप (सल्ल०) ने मुझसे फ़रमाया, "तुम्हारे पास जो सबसे बड़ा बरतन है, वह मेरे पास ले आओ।" मैं गई और

आटा गूँधने का बरतन ले आई। नबी (सल्ल०) ने दूध दूहा और वह बरतन भर गया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "इसे ले जाओ, खुद भी पियो, पड़ोसियों को भी पिलाओ और जब तुम इस बकरी का दूध दूहना चाहो तो उसे मेरे पास ले आओ।" मैं सुबह-शाम उस बकरी को नबी (सल्ल०) के पास ले जाती थी और आप (सल्ल०) दूध दूह देते थे। दूध की बहुतायत से हम खुशहाल हो गए।

जब मेरे बाप वापस आए और बकरी को दूहा तो दूध की मात्रा फिर पहले जैसी हो गई। मेरी माँ ने उनसे कहा, "आपने तो इस बकरी को ख़राब कर दिया।" उन्होंने पूछा, "क्या बात है?" माँ ने कहा, "यह बकरी तो बड़े बरतन में भरकर दूध देती थी।" बाप ने पूछा "इसको कौन दूहा करता था?" मेरी माँ ने कहा, "नबी (सल्ल॰)।"

मेरे बाप ने कहा, "मुझे नबी (सल्ल०) के बराबर समझ रही हो, खुदा की क़सम! आप (सल्ल०) का मुबारक हाथ मेरे हाथ से कहीं ज़्यादा बरकतवाला है।"

हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०) की बेटी के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत क़रीरा और हज़रत अक़ीला (रज़ि०)

हज़रत क़रीरा-बिन्ते-हारिस अनवारिया (रज़ि०) और हज़रत अक़ीला-बिन्ते-उबैद-बिन-हारिस (रज़ि०) दोनों मुहाजिर सहाबिया हैं। हज़रत क़रीरा (रज़ि०) हज़रत अक़ीला (रज़ि०) की माँ हैं।

हज़रत अक़ीला (रज़ि०) से रिवायत है कि मैं और मेरी माँ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और आप (सल्ल०) से बैअत की। नबी (सल्ल०) उस वक़्त एक पथरीले मैदान में एक ख़ेमे के अन्दर तशरीफ़ रखते थे।

आप (सल्ल०) ने हमसे इस बात पर बैअत की कि हम अल्लाह के साथ किसी को शरीक नहीं करेंगे, औंर उन तमाम बातों पर जिनकी चर्चा सूरा मुमतहिना के आख़िरी रुकूअ् में है। हमने उन तमाम बातों का इक़रार किया और अपने हाथ बैअत करने के लिए बढ़ाए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं औरतों से हाथ नहीं मिलाता।" उसके बाद नबी (सल्ल०) ने हम लोगों को मग़फ़िरत की दुआ दी।

हज़रत क़रीरा (रज़ि०) और हज़रत अक़ीला (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हुए।

हज़रत जुज़ामा-बिन्ते-जन्दल (रज़ि०)

हज़रत जुज़ामा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की हिजरत से कुछ पहले ही इस्लाम क़बूल किया। जब नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों को मदीना हिजरत करने की इजाज़त दी तो वे भी दूसरे सहाबा और सहाबियात के साथ हिजरत करके मदीना चली गईं और फिर सारी ज़िन्दगी वहीं गुज़ारी।

और हालात मालूम नहीं हैं।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०)

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) मक्का के मशहूर मुशरिक उत्बा-बिन-रबीआ की बेटी थीं। मक्का की फ़तह (विजय) के मौक़े पर अपनी बहन हिन्द-बिन-उत्बा (रज़ि०) के साथ नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं, इस्लाम क़बूल किया और बैअत की।

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) से रिवायत है कि फ़ातिमा-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से उन बातों पर बैअत की जिनकी चर्चा सूरा मुमतहिना की आयात में है कि— शिर्क न करेंगी, बदकारी न करेंगी, वग़ैरा। उनके एक ग़ुलाम अबू-साइब ख़ब्बाब (रज़ि०)

को भी सहाबी होने की ख़ुशनसीबी हासिल है। वे ख़ब्बाब-मौलाए-फ़ातिमा-बिन्ते-उत्बा (रज़ि०) के नाम से मशहूर हैं।

हज़रत फ़ातिमा-बिन्ते-उतबा (रज़ि०) के और हालात मालूम नहीं हो सके।

एक ख़ानाबदोश सहाबिया (रज़ि०)

एक बार नबी (सल्ल०) अपने जाँनिसारों की एक बड़ी जमाअत के साथ सफ़र कर रहे थे। सफ़र के दौरान आप (सल्ल०) एक ऐसे इलाक़े से गुज़रे जहाँ दूर-दूर तक पानी का नामो-निशान नहीं था। लोगों ने प्यास की शिकायत की तो नबी (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) और इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि०) से फ़रमाया, "तुम दोनों इधर-उधर जाकर पानी का पता लगाओ। वे दोनों हुक्म के मुताबिक़ पानी की तलाश में निकले। कुछ दूर जाकर उन्होंने एक देहाती ख़ातून को देखा जो ऊँट पर सवार थीं और उन्होंने अपने पाँव पानी के दो मशकों पर लटका रखे थे। हज़रत अली (रज़ि०) और हज़रत इमरान (रज़ि०) ने उनसे पूछा, "पानी कहाँ से ला रही हो?" उन्होंने जवाब दिया, "पानी यहाँ से बहुत दूर है। पानी लेकर यहाँ पहुँचने में मेरे आठ पहर गुज़र चुके हैं।"

वे दोनों बोले, "तुम हमारे साथ चलो।"

ख़ातून ने पूछा, "कहाँ चलूँ?" उन्होंने फ़रमाया, "नबी (सल्ल०) के पास।"

बोली, "वह शख़्स जिसे लोग साबी (बेदीन) कहते हैं?"

उन्होंने कहा, "हाँ, जिनको मुशरिक ऐसा समझते हैं।" फिर दोनों उस ख़ातून को साथ लेकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पहुँचे। आप (सल्ल०) ने ख़ातून से फ़रमाया, "अगर इजाज़त दो तो तुम्हारी मशकों से थोड़ा सा पानी ले लें।"

उन्होंने कहा, "ले लें, लेकिन थोड़ा-सा लेना, मैं इसे बहुत दूर से लाई हूँ और यहाँ तक पहुँचने में बड़ी परेशानी उठाई है।" नबी (सल्ल०) ने पहले तो मशकों (चमड़े का बना हुआ पानी रखने का थैला) के ऊपरी मुँह खोले और बरतन में थोड़ा-थोड़ा पानी लेकर मुँह बन्द कर दिए और फिर नीचे की तरफ़ मुँह खोलकर थोड़ा-थोड़ा पानी निकाला। फिर लोगों को हुक्म दिया कि यहाँ आकर ख़ुद भी पानी पिएँ और अपने जानवरों को भी पिलाएँ। सारे सहाबियों ने जी भरकर पानी पिया और अपनी सवारियों को भी ख़ूब पिलाया। अल्लाह ने उस पानी में इतनी बरकत दी कि इतनी बड़ी जमाअत के पानी पीने और जानवरों को पिलाने के बाद भी दोनों मशकें पहले से भी ज़्यादा भरी मालूम होती थीं। वे ख़ातून यह देखकर हैरान रह गईं।

अब नबी (सल्ल०) ने सहाबियों को हुक्म दिया कि इस औरत के लिए खाने का सामान लाओ। सहाबियों (रज़ि०) ने फ़ौरन खाने का बहुत-सा सामान, खुजूरें, सत्तू, आटा जमा किया और नबी (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ एक कपड़े में बाँधकर ख़ातून के ऊँट पर रख दिया। फिर नबी (सल्ल०) ने ख़ातून से फ़रमाया, "तुम अब जाओ और ये चीज़ें अपने घरवालों को खिलाओ।"

जब वे चलने लगीं तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "देख लो, तुम्हारी मशकें पानी से पूरी भरी हुई हैं, लश्कर ने जो पानी पिया है उसे अल्लाह ने पिलाया है।"

जब वे ख़ातून घर पहुँचीं तो घरवालों ने पूछा, "तुमने आज पानी लाने में इतनी देर क्यों की?"

उन्होंने कहा, "रास्ते में मुझे दो आदमी मिले, जो मुझे उस शख़्स के पास ले गए जिसे लोग साबी (बेदीन) कहते हैं। उसने मशकों का मुँह खोलकर जानवरों सहित अपने सारे लश्कर को पानी पिलाया लेकिन मेरे पानी में कोई कमी नहीं आई। खुदा की क़सम! दुनिया में उससे बढ़कर

कोई जादूगर नहीं है और हो सकता है कि वह अल्लाह का रसूल ही हो जैसा कि उसके साथी उसे कहते हैं।" हालाँकि नबी (सल्ल०) ने ख़ानाबदोश ख़ातून को उनके पानी का बदला दे दिया था फिर भी सहाबियों ने उनके उस एहसान को याद रखा और जब भी उस इलाक़े के मुशरिकों से लड़ाई होती उस ख़ातून के क़बीले को छोड़ देते।

उनपर सहाबियों (रज़ि०) की इस मेहरबानी का इतना असर हुआ कि एक बार उन्होंने अपने क़बीलेवालों को जमा किया और उनसे कहा, "तुम देखते हो कि ये लोग हमारे साथ कितनी मेहरबानी करते हैं, यह सिर्फ़ इस वजह से है कि मैंने एक बार उनको थोड़ा-सा पानी पिलाया था। उनका इस तरह एहसान मानना इस बात की पहचान है कि ये बहुत अच्छे लोग हैं और उनका सरदार ख़ुदा का सच्चा रसूल है। मेरी मानो तो हम सब भी उनमें शामिल हो जाएँ और उनके रसूल पर ईमान ले आएँ।"

उनके क़बीलेवालों ने उनकी बात को मान लिया और सबने इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत उम्मे-राला कुशैरिया (रज़ि०)

कुछ रिवायतों में हज़रत उम्मे-राला (रज़ि०) के ज़बान की उमदगी की ख़ासतौर पर चर्चा की गई है।

कहा जाता है कि जब वे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं तो हज़रत असमा अंसारिया (रज़ि०) की तरह उन्होंने भी नबी (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे मर्द तो जिहाद में शामिल होने की ख़ुशनसीबी हासिल करते हैं, लेकिन हम औरतें घरों में रहती हैं, क्या हमें भी मर्दों के नेक कामों के अज्र का कुछ हिस्सा मिलने की उम्मीद हो सकती है?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ऐ अरब की औरतो! अगर तुम

अल्लाह को न भूलोगी, ग़ैर मर्दों को न देखोगी और ग़ैर मर्दों को अपनी आवाज़ न सुनाओगी तो ज़रूर अज्र और सवाब पाओगी।"

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद वे हज़रत हुसैन (रज़ि०) को गोद में लिए मदीना की गलियों में फिरती रहती थीं और जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के दरवाज़े पर पहुँचती थीं तो यह शेर पढ़ती थीं—

"ऐ फ़ातिमा के हरे-भरे घर,
तुमने मेरे ग़म को बढ़ा दिया,
खुदा तुम्हें आबाद रखे।"

हज़रत उम्मे राला (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का साल और दूसरे हालात मालूम नहीं।

समाप्त